# समर्पण

जिसे अन्त तक छिपाया और अन्त में जो स्वयं
छिप गया; किन्तु जो अन्तस्तल में
सदा के लिये बस गया है, उस
अन्तस्तल के अमर राजा की
दिव्य आत्मा की स्मृति
में यह अभागिनि
रचना समर्पित
है

'सेर भर जलता है जब खूने जिगर शाइर का।
तब नज़र आती है एक मिसरए तर की सूरत ॥'

(मोमिन)

# भूमिका

मुझसे अनुरोध किया गया है कि मैं 'अन्तस्तल' पर भूमिका लिखूँ। पर अन्तस्तल पर 'भूमिका' उठाना—हवा में किले बनाना—आकाश में अट्टालिका उठाना है। इसके लिये गन्धर्व नगर-निर्माता अलौकिक 'इन्जीनियर' दरकार है! 'अन्तस्तल' एक सच्चे जादू की पिटारी है, मानस भावों के चित्रों का विचित्र एलबम है, अन्दरूनी बायस्कोप की चलती-फिरती-जीती-जागती-तसवीरें हैं, जिनके दृश्य दिल की आँखों ही से देखे जा सकते हैं, चर्मचक्षुओं का यह विषय नहीं है। हृदय की बातें हृदय ही से जानी जा सकती हैं, जड़ लेखनी का यह काम नहीं है। फिर भी इस अन्तस्तल के विषय में संक्षेप में कहना चाहें तो यह कह सकते हैं कि:—

"काग़ज पै रख दिया है कलेजा निकाल के"॥

अन्त:करण के भावों का सूक्ष्म विश्लेषण मनोविज्ञान-शास्त्री का काम है। आजकल 'मनोविज्ञान' शास्त्र एक बड़े महत्व का विषय होगया है। मनोविज्ञान के आचार्यों ने अपनी गूढ़ गवेषणाओं से—बहुत बारीक छानबीन से—इसे अत्यन्त समुन्नत दशा में पहुँचा दिया है।

मनोविज्ञानी का काम, कार्यकारण भाव का निरूपण करना है। क्रोध के आवेश में मनुष्य के मन की क्या दशा होती है, उस समय उसमें किन किन भावों का उदय होता है, क्यों होता है, उनका प्रभाव क्रोधाविष्ट व्यक्ति की वाह्य आकृति पर क्या पड़ता है, इत्यादि बातों की वैज्ञानिक खोज करना मनोविज्ञान के प्रवीण पारखी का काम है। मनोविज्ञान-प्रदर्शन का यह प्रकार जितना महत्वपूर्ण है उतना ही गम्भीर भी है—सुगम नहीं है, रोचक भी नहीं है-ऐसा होना स्वाभाविक भी है। कृषिशास्त्र का आचार्य या वनस्पति-विज्ञान का विद्वान् ईख के क्रम विकाश का इतिहास वैज्ञानिक ढङ्ग से सुनाकर—ईख के पौदे की वृद्धि का विधान और उसमें रससंचार का प्रकार समझाकर—श्रोता के लिये विषय में इतनी सरसता या मधुरता नहीं ला सकता जितनी हलवाई खाँड खिलाकर या मिठाइयाँ चखाकर। खंडसाली या हलवाई गन्ने की वैज्ञानिक व्याख्या नहीं करते। यह उनका काम नहीं। वह यह जानते भी नहीं कि मिठाई में यह मिठास कैसे और क्यों कर उत्पन्न हो जाता है, फिर भी उनका व्यापार—काम—है बहुत मधुर, इसका साक्षी हर कोई है। यह सार्वजनिक अनुभव है।

कवि या सहृदय लेखक का काम भी कुछ ऐसा ही है। वह मानसिक भावों की वैज्ञानिक व्याख्या करने नहीं बैठता, सिर्फ मनोहर चित्र खींचता है, जिन्हें देखकर सहृदय—'समाखा'—दर्शक फड़क जाता है। कभी उसके मुख से आह निकलती है

कभी वाह, कभी आँखों में आँसू आ जाते हैं, कभी होठों पर मुस्कराहट। अन्तस्तल में कभी कभी के प्रस्तुत भाव सहसा जागृत हो उठते हैं, छिपे हुए दिली जज़बात आँखों के सामने आकर नाचने लगते हैं।

प्रस्तुत पुस्तक 'अन्तस्तल' इसका एक उत्तम उदाहरण है।

इसमें अन्तस्तल के चतुर चितेरे ने बड़े कौशल से—बड़ी सफ़ाई से—मानसिक भावों के विविध रूप-रङ्ग के विचित्र चित्र खींचकर कमाल का काम किया है। मैं उन्हें इस सफलता पर बधाई देता हूँ। 'अन्तस्तल' हिन्दी में निःसन्देह अपने ढंग की एक नई रचना है। यह पाठक और लेखक दोनों के काम की चीज़ है। समझदार पाठकों के लिये यह शिक्षाप्रद मनोविनोद की सामग्री है और लेखकों के लिये भाव चित्रण के दिग्दर्शन का बढ़िया साधन। इसकी वर्णनशैली में और भाषा में स्वाभाविकता है, इस कारण कहीं-कहीं प्रान्तीयता की झलक है, पर भाव-पूर्ण चित्रों की मनोहरता में वह खटकती नहीं, उसे गुल्लाला का दाग़, चाँद का धब्बा या कमलपुष्प पर पड़ी हुई शैवाल की पत्ती समझ सकते हैं!

मैं आशा करता हूँ हिन्दी-साहित्य में यह पुस्तक वह आदर और प्रचार पायगी जिसके यह योग्य है।

महाविद्यालय, ज्वालापुर<br>
श्रावण कृष्णा ३ शुक्रवार<br>
संवत् १९७८ वि०।

पद्मसिंह शर्मा।

# दुःखभरी दो बातें

—०—

मेरी यह रचना विधवा है। हाजी मुहम्मद के साथ एक तौर से मैंने इसका ब्याह कर दिया था। यह आदमी गुजराती साहित्य-मन्दिर का मस्ताना पुजारी था—वह 'वीसवीं सदी' नामक प्रख्यात गुजराती पत्रिका का सम्पादक था। सबसे प्रथम उसी की दृष्टि में यह रचना चढ़ा। उसने पागल की तरह इसे लाड़ किया—मैंने भी अपने पराये की परवाह न कर उसी से इसका ब्याह कर दिया! ब्याह होते होते ही तो वह मर गया!!!

कितनी हौंस से उसने इसे चाहा था! 'रूप' को सुनकर उसकी आँखें झूमने लगी थीं, 'दुःख' को सुनकर वह रोया और 'अनुताप' को सुनकर वह उद्वेग के मारे खड़ा हो गया था। वह अच्छी तरह हिन्दी नहीं पढ़ सकता था, सुनता था। कितनी वार उसने इसका गुजराती अनुवाद करने को कलम हाथ में ली पर रख दी। उसने कहा "दिल की उमंग कुछ कम हो जाय—मज़ा जरा ठण्डा पड़ जाय—तब लिखूंगा।"

एक एक पंक्ति पर चित्र बनाने की उसने तैयारियाँ की थीं।

एक चित्रकार 'रूप' पर कुछ चित्र बनाकर लाया भी था—पर वे उसे पसन्द न आये। उसने कहा—"लेखक जो कुछ कह नहीं सकता है—चित्रकार उसी कमी को पूरी करता है। उत्तम चित्र-कार वही है। इन चित्रों ने तो इस अवगुण्ठनवती रचना सुन्दरी को पशु की तरह नंगी कर दिया है।" उसने वे चित्र रद्दी की टोकरी में डाल दिये थे।

वह एकाएक मर गया। साहित्य के भाग फूट गये। अब इस रचना को क्या अलंकार मयस्सर होगा ? हिन्दी के प्रका-शकों की दृष्टि निराली है—बहुत कम उनमें साहित्य के सौन्दर्य को परख सकते हैं। उनकी दृष्टि वर्दा-फरोशों की सी है। गुलामी के जमाने में जब कोई खूबसूरत जवान लड़की बाजार में बिकने आती थी तो बर्दा-फ़रोश (मनुष्यों का व्यापारी) उसके सौन्दर्य को इस दृष्टि से निरखता था कि बाजार में इसके कितने दाम उठेंगे ! हिन्दी के प्रकाशकों की यही दृष्टि है। लेखक अभागे इतने पतित और आत्माभिमान शून्य हो गये हैं कि अपनी अपनी रचना सुन्दरियों का हाथ थामे इन्हीं वर्दा-फरोशों के द्वार पर झख मारते फिरते हैं; और कहते ग्लानि होती है—उसके एक २ सौन्दर्य स्थल को उघाड़ उघाड़ कर दिखाते हैं। यह मोल भाव का महत्त्व है ! यह कमीने पैसे की अमलदारी है ! मैं भी वैसा ही अभागा लेखक हूँ। अतएव मुझे यह आशा करने

# दश वर्ष बाद

'अन्तस्तल' दस वर्ष बाद दुबारा छप कर पाठकों के सम्मुख आ रहा है। इन दस वर्षों में बहुत कुछ जीवन बदल गया। फिर 'अन्तस्तल' वही कहाँ रहता ? इच्छा थी 'अन्तस्तल' की सभी वेदनाओं को इस बार आपके सम्मुख रखदूँ। मगर समय सहायक नहीं, नई क़िस्त में 'मग्न' उपस्थित है, फ़िलहाल पाठक इसी पर सन्तोष करें मेरी यह विधवा रचना-युगधर्म का अनुसरण कर-एक वार 'दुलहिन' बनने की हविस पूरा किया चाहती है। जीवित रहा, और सम्भव हुआ, तो इस हविस को पूरी करने की चेष्टा करूँगा। नहीं कह सकता, देखकर आप रोवेंगे या हँसेंगे।

नई दिल्ली<br>ता० ६-१२-३०

चतुरसेन

# फिर दस वर्ष बाद

ठीक दस वर्ष बाद अन्तस्तल का यह तीसरा संस्करण पाठकों की सेवा में उपस्थित करके मैं अपने को बड़भागी समझता हूँ। इस बार कुछ वेदनाएँ और बढ़ी हैं। 'वह', 'मा' और 'स्फुट' नवीन जोड़ दिये गये हैं। इन दस वर्षों में, दूसरे संस्करण के बाद ख़र्च बट्टा काटकर यही पूँजी बच पाई। सौ कौड़ी पाई हाज़िर हैं। अगर आपने मानव हृदय पाया है तो इसकी कोई न कोई वेदना आपके अन्तस्तल का अवश्य स्पर्श करेगी, तब यदि आपके नेत्रों में जलकण दीख पड़ें तो इस भाग्यहीन लेखक को स्नेहार्द्र भाव से स्मरण करना, वह, उस समय तक यदि पृथ्वी पर न भी रहा तो आपकी यह स्निग्ध सौगात उस तक पहुँच जायगी।

लाल बाग़, दिल्ली-शाहदरा
७।७।४१
( श्रावणी )

चतुरसेन

# मन्त्र

# रूप

उस रूप की बात मैं क्या कहूँ? काले बालों की रात फैल रही थी और मुखचन्द्र की चाँदनी छिटक रही थी, उस चाँदनी में वह खुला धरा था। सोने के कलसों में भरा हुआ था जिनका मुँह खूब कस कर बँध रहा था, फिर भी महक फूट रही थी। उस पर आठ दस चम्पे की कलियाँ किसी ने डाल दी थीं। भौंरे भीतर घुसने की जुगत सोच रहे थे। मदन कमान लिये खड़ा रखा रहा था। उसका सहचर यौवन अलकसाया पड़ा था, न उसे भूख थी न प्यास, छका पड़ा था।

कौन विचार करता ? मैंने दो कदम बढ़ कर उसे उठाया और खड़े ही खड़े पी गया, जी हाँ, खड़े ही खड़े !!

पर प्याले बहुत छोटे थे, बहुत ही छोटे । उनमें कुछ आया नहीं । उस चम्पे और चाँदनी ने जो उसे शीतल किया था और उस मिश्री ने जो उसे मधुरा दिया था, उससे कलेजे में ठण्डक पड़ गई । ऐसी ठण्डक न कभी देखी थी न चखी । इसके बाद मैं मूर्ख की तरह प्याला लिये उसकी ओर देखने लगा । उसने कहा-और लोगे ? मैंने कहा-"बहुत ही प्यासा हूँ, और प्याले बहुत ही छोटे हैं, तिसपर उनमें टूँटना निकला हुआ है, इनमें आता ही कितना है, क्या और है ?"

उसने कहा—"बहुत है, पर भीतर है, घड़ों का मुँह खोलना पड़ेगा—क्या बहुत प्यासे हो ?"

सभ्यता भाड़ में गई । कभी खातिरदारी का बोझ किसी पर नहीं रखता था। पराये सामने सदा संकोच से रहता था—पर उस दिन निर्लज्ज बन गया । मैंने ललचा कर कह ही दिया—"बहुत प्यासा हूँ, क्या ज्यादा तकलीफ होगी ? न हो तो जाने दो, इन प्यालियों में आया ही कितना ?"

उसनें कहा—"तो चलो घर, मार्ग में खड़े खड़े क्यों ? पास ही तो घर है" । मैं पीछे हो लिया ।

मैं बड़ा प्यासा था। हार कर आ रहा था। शरीर और मन दोनों चुटीले हो रहे थे, कलेजा उबल रहा था और हृदय झुलस रहा था। मैं अपनी राह जा रहा था। मुझे आशा न थी कि बीच में कुछ मिलेगा। पर मिल गया। संयोग की बात देखो कैसी अद्भुत हुई। और समय होता तो मैं उधर नहीं देखता। मैं क्या भिखारी हूँ या नदीदा हूँ जो राह चलते रस्ते पड़ी वस्तु पर मन चलाऊँ ? पर वह अवसर ही ऐसा था। प्यास तड़पा रही थी, गर्मी मार रही थी और अतृप्ति जला रही थी। मैंने कहा--ज़रासा इसमें से मुझे मिलेगा ? भूल गया, कहा कहाँ ? कहने की नौवत ही न आई—कहने की इच्छा मात्र की थी। पर उसीसे काम सिद्ध हो गया-उसने आँचल में छान कर प्याले में उड़ेला, एक डली मुस्कान की मिश्री मिलाई और कहा—लो, फिर भूला, कहा सुना कुछ नहीं। आँचल में छान, प्याले में डालकर, मिश्री मिला कर सामने धर दिया। चम्पे की कलियाँ उसी में पड़ी थीं-महक फूट रही थी। मैं ऐसी उदासीनता से किसी की वस्तु नहीं लेता हूँ पर महक ने मार डाला। आत्मसम्मान, सभ्यता, पदमर्यादा सब भूल गया। कलेजा जल रहा था-जीभ ऐंठ रही थी।

कौन विचार करता ? मैंने दो कदम बढ़ कर उसे उठाया और खड़े ही खड़े पी गया, जी हाँ, खड़े ही खड़े !!

पर प्याले बहुत छोटे थे, बहुत ही छोटे । उनमें कुछ आया नहीं । उस चम्पे और चाँदनी ने जो उसे शीतल किया था और उस मिश्री ने जो उसे मधुरा दिया था, उससे कलेजें में ठण्डक पड़ गई । ऐसी ठण्डक न कभी देखी थी न चखी । इसके बाद मैं मूर्ख की तरह प्याला लिये उसकी ओर देखने लगा । उसने कहा-और लोगे ? मैंने कहा- "बहुत ही प्यासा हूँ, और प्याले बहुत ही छोटे हैं, तिसपर उनमें टूँटना निकला हुआ है, इनमें आता ही कितना है, क्या और है ?"

उसने कहा—"बहुत है, पर भीतर है, घड़ों का मुँह खोलना पड़ेगा—क्या बहुत प्यासे हो ?"

सभ्यता भाड़ में गई । कभी खातिरदारी का बोझ किसी पर नहीं रखता था । पराये सामने सदा संकोच से रहता था—पर उस दिन निर्लज्ज बन गया । मैंने ललचा कर कह ही दिया—"बहुत प्यासा हूँ, क्या ज्यादा तकलीफ होगी ? न हो तो जाने दो, इन प्यालियों में आया ही कितना ?"

उसनें कहा—"तो चलो घर, मार्ग में खड़े खड़े क्यों ? पास ही तो घर है" । मैं पीछे हो लिया ।

खोलते ही ग़जब हो गया। लबालब था। गाँठ खोलने का एक हलका ही सा झटका लगा था, बस छलक कर बह गया। समेटे से न सिमटा। उसने कहा—पीओ, पीओ, देखते क्या हो? देखो बहा जाता है—मिट्टी में मिला जाता है।

मेरे हाथ पाँव फूल गये। मैंने घबड़ा कर कहा—यह इतना? इतना क्या मैं पी सकूँगा? यह तो बहुत है। और क्या छानोगी नहीं? उसने कहा-छानने में क्या धरा है। यह तो आप ही निर्मल है। फिर तलछट किसको छोड़ोगे? पी जाओ सब। इतने बड़े मर्द हो—क्या इतना नहीं पी सकते?

मैंने झिझक कर कहा—और मिश्री? जरासी मिश्री न मिलाओगी? उसने हँसकर कहा—मिश्री रहने भी दो, ज्यादा मीठा होने से सब न पी सकोगे—जी भर जायगा, लो यह नमक मिर्च, चटपटा बनालो—फिर देखना इसका स्वाद! इतना कहकर उसने जरा यों, और जरा यों, बुरक दिया। वह नमक मिर्च काजल सा पिसा हुआ था, बिजली की तरह चमक रहा था। उसने स्वयं मिलाया, स्वयं पिलाया। भगवान् जाने क्या जादू था, फिर जो होश गया है अब तक बेहोश हूँ।

# प्यार

उसने कहा—नहीं
मैंने कहा—वाह !
उसने कहा—वाह
मैंने कहा—हूँ-ऊँ
उसने कहा—उहुँक्
मैंने हँस दिया,
उसने भी हँस दिया।

अँधेरा था, पर चलिच्चित्रों की भाँति सब दीख पड़ता था। मैं उसीको देख रहा था। जो दीखता था उसे बताना

असम्भव है। रक्त की एक एक बूंद नाच रही थी और प्रत्येक क्षण में सौ सौ चक्कर खाती थी। हृदय में पूर्णचन्द्र का ज्वार आ रहा था, वह हिलोरों में डूब रहा था; प्रत्येक क्षण में उसकी प्रत्येक तरंग पत्थर की चट्टान बनती थी, और किसी अज्ञात बल से पानी २ हो जाती थी। आत्मा की तन्त्री के सारे तार मिले धरे थे, उंगली छुआते ही सब झनझना उठते थे। वायुमण्डल विहाग की मस्ती में झूम रहा था। रात का आँचल खिसक कर अस्तव्यस्त हो गया था। पर्वत नंगे खड़े थे और वृक्ष इशारे कर रहे थे। तारिकायें हँस रही थीं। चन्द्रमा बादलों में मुँह छिपा कर कहता था—भई! हम तो कुछ देखते भालते हैं नहीं। चमेली के वृक्षों पर चमेली के फूल—अंधेरे में मुँह भींचे गुप-चुप हँस रहे थे। उन्होंने कहा जरा इधर तो आओ। मैंने कहा-अभी ठहरो। वायु ने कहा-हैं! हैं! यह क्या करते हो? मैंने कहा-दूर हो, भीतर किसके हुक्म से घुस आये तुम? खटसे द्वार बन्द कर लिया। अब कोई न था। मैंने अघा कर साँस ली। वह साँस छाती में छिप रही। छाती फूल गई। हृदय धड़कने लगा। अब क्या होगा? मैंने हिम्मत की। पसीना आ गया था। मैंने उसकी पर्वा न की।

आगे बढ़कर मैंने कहा—जरा इधर आना।
उसने कहा—नहीं,
मैंने कहा-वाह !
उसने कहा—वाह
मैंने कहा-हूं-ऊँ
उसने कहा उहुँक्
मैंने हँस दिया।
उसने भी हँस दिया।

## लज्जा

हाय! हाय! ना, यह मुझसे न होगा! तुम बीबी जी! बड़ी बुरी हो, तुम्हीं न जाओ। वाह! नहीं, तुम मुझे तंग मत करो। मैं तुम्हारे हाथ जोड़ूँ, पैरों पड़ूँ, देखो-हाहा खाऊँ, बस इससे तो हद है? अच्छा तुम्हें क्या पड़ी है? तुम जाओ। ठहरो मैं भी तुम्हारे साथ चलती हूँ। ना, वहाँ तो नहीं, भला कुछ बात है, इतनी बड़ी हो गई? समझ नहीं आई। कोई तो है नहीं, अकेले हैं। कोई क्या कहेगा? तुम्हें कहते लाज भी नहीं आती। हँसती क्यों हो? देखो यह हँसी अच्छी नहीं लगती। बस कह दिया है—मैं रूठ जाऊँगी।

एक बार सुनी, दो बार सुनी। तुम तो हाथ धोकर पीछे ही पड़ गईं, अच्छा जाओ आज मैं खाऊँगी नहीं, मुझे भूख नहीं है, मेरे सिरमें दर्द है-पेट दुखता है। अपनी ही कहे जाती हो, किसी के दुःख की भी खबर है? यह लो-हँसी ही हँसी। इतना क्यों हँसती हो? हटो, मैं नहीं बोलती। वाह! मेरी अच्छी बीबी! बड़ी लाड़ो बीबी जी! देखो, भला कहीं ऐसा भी होता है! राम राम। मैं तो लाज से गड़ी जाती हूँ। तुम्हें तो हया न लिहाज। देखो, हाथ जोड़ूँ, धीरे धीरे तो बोलो—हाय! धीरे धीरे। अरे नहीं, गुदगुदी क्यों करती हो? नोंचो मत जी! तुम्हें हो क्या गया है? कोई सुन लेगा। धकेलो मत, देखो मेरे लग गया, पैर का अँगूठा कुचल गया। हाय मैया! बड़ी निर्दयी हो, मैं तुम्हें ऐसा न जानती थी। अम्मा जी के जाने से तुम्हारी बन आई। अब मालूम हुआ, भोले चेहरे में ये गुन छिपे पड़े थे! डर क्या है? दिन निकलने दो। सब समझ लूँगी। आई चलकर धक्का देने वाली। वाह जी! हटो--अब तुम मुझे मत छेड़ना, हायरे! मेरा अँगूठा।

न मानोगी? बड़ी पक्के दीदे की हो। अच्छा, नहीं जाते, नहीं जाते, एक से लाख तक। कह दिया, करलो

क्या करना है। आज सब बदले ले लेना, जन्म जन्म के वैर चुकाना। आने दो अम्मा जी को। तुम्हारे यह कैसे लच्छन हैं जी? ना, हमें यह छिछोरपन अच्छा नहीं लगता। राजी राजी समझती ही नहीं। कुछ बालक हो, वाह जी वाह, सुसराल में जाकर यही लच्छन सीख आई हो। हटो! मैं तुमसे नहीं बोलती। अच्छा, आखिर मतलब भी कहो? काम क्या है? मैं क्यों अनहोनी करूँ? पानी तुम दे आओ, बुद्धो को भेज दो--मुझ पर ही दण्ड क्यों?

हद हो गई। यह कैसी हठ है? न जाऊँगी-न जाऊँगी-न जाऊँगी, बस-कितनी बार कहूँ? लो मैं रसोई में जाये बैठती हूँ, नाक में दम कर दिया, चैन नहीं लेने देतीं।

हाय करम! भगवान् ने कैसे दुःख दिये। देखो मेरा जी अच्छा नहीं है। नहीं तो मैं इतना हठ न करती, तुम्हारी बात क्या कभी टाली है? आओ चलो-तुम्हारी कोठरी में चलकर मजे से सोवें। खूब गर्माई रहेगी।

क्यों? इसमें क्या हर्ज है? इसी तरह क्या रोज नहीं सोते थे? आज ही मक्खी ने छींक दिया? चलो, नखरे मत करो। अच्छा देखो--आज तुम मेरी बात मानलो--कल जैसा तुम कहोगी मान लूँगी। बस अब तो राजी! चलो उठो

उठो ! अब नख़रे मत करो। मेरी बीबी जी बड़ी अच्छी हैं।

हे भगवान्! हे जगदीश! हे परब्रह्म! यह आज कैसा संकट आया। हे मुकुन्द मुरारी! किसी तरह लाज बचाओ। बुरी फँसी। हाय करम! अच्छा चलो तुम भी साथ चलो, तुम्हें मैं छोड़ने वाली नहीं हूँ। चलो। अब नानी क्यों मरती है? 'भुस में आग लगा जमालो दूर खड़ी', तुम्हारी वह मसल है। मैं तुम्हें छोड़ने वाली नहीं। तुमने बहुत मेरा नाक में दम किया है। ना, कितना ही मचलो छोड़ूगी नहीं। बनाओ बहाने बनाओ। अब मेरी बारी है।

हर बात में तुम्हारी ही चलेगी? मैं कुछ हूँ ही नहीं। तो तुम्हें बाघ खा लेंगे? जाने दो फिर, मैं भी नहीं जाती। हरे राम! इस दुःख से तो मौत ही अच्छी! अच्छा! पर देखो बाहर खड़ी रहना। देखो तुम्हें मेरी क़सम! हाय! हाय! यह क्या कर रही हो। अच्छा आगे आगे चलो! अरे! धीरे धीरे। घोड़ी सी क्यों दौड़ती हो? बड़ी नट खट हो। देखो तुम्हारे पैरों पड़ूँ खड़ी रहना। नहीं तो याद रखना मुझसे बुरा कोई नहीं। भला तुम्हें मेरी क़सम।

# वियोग

वे मुझे महाशय कहकर पुकारते थे और मैं उन्हें हरीश कहा करता था। उनका पूरा नाम तो हरिश्चन्द्र था, पर मैं प्यार से उन्हें हरीश कहा करता था। वचपन से--जव कि वे नंगे होकर नहाया करते थे—तव तक, जव तक कि वे वड़े भारी इन्जीनियर हुए, मैंने वरावर उन्हें इसी नाम से पुकारा। इन्जीनियर होने के ६ दिन वाद ही तो वे मरगये !

वहुत दिन वीत गये हैं --धुँधली सी याद है। मैं अपने घर के पिछवाड़ी, गेंद वल्ला खेल रहा था, रुई की गेंद थी

और बाँस का बल्ला। उन्होंने गली के छोर से आकर गेंद लपक ली। हरा कोट पहने थे और सिर पर सलमें की टोपी थी। छोटा सा मुँह था और सुनहले बाल कन्धे पर लहरा रहे थे। उम्र कितनी थी सो नहीं बता सकता, जिस बात को समझने का ज्ञान नहीं था—आवश्यकता भी नहीं थी, अब वह कैसे याद आ सकती है ? वे मेरे आँखों में गड़ गये। मैंने आगे बढ़ कर कहा—"तुम खेलोगे ?" उन्होंने कहा—"खिलाओगे ?" मैंने खिला लिया। वही पहला दिन था। इस जन्म में वही पहली मुलाक़ात थी। उसी दिन से हम एक हुए।

मुहल्ले में उनका घर था। पर वे उसमें कभी रहे नहीं थे। उनके पिता विदेश में नौकरी करते थे। उन्हीं के साथ वे भी वहीं रहते थे। अब वे वहीं स्कूल में भर्ती हुए, मैं फेल होकर एक साल पीछे आ रहा। हम लोग एक साथ पढ़ने लगे। एक श्रेणी में बैठने लगे। कैसे सुन्दर वे दिन थे, यह कहना असम्भव है। दोनों एक बेञ्च पर बैठते थे। उनका हिसाब अच्छा था। मैं उसमें कमजोर था। वे स्लेट मेरी ओर झुका देते थे। मैं मास्टर की नज़र बचा-उनकी नकल कर लेता था। उसके बदले में कुछ चित्र और कवितायें मुझे उन्हें तैयार कर देनी पड़ती थीं। इनका मुझे शौक था और उन्हें चाव। एक के अपराध पर दूसरा पिट लेता तो मानों खज़ाना पा लिया। घण्टों पहले स्कूल

में जा बैठते थे। बातों का तार कभी नहीं टूटता था। रोग तो देखा नहीं था, चिन्ता से तब तक ब्याह नहीं हुआ था, शोक का अभी जन्म ही नहीं हुआ था। मौज थी, उछाह था प्रेम था। हम दोनों उसे खूब खाते थे और बखेरते थे।

मुझे रोज़ एक पैसा पिता जी देते थे। अठवाड़े के पैसे इकट्ठे करके मैं उनकी दावत करता था। जङ्गल के एकान्त में, चाँदनी की चमक में, हम लोग एक दूसरे को देखा करते थे। अब कुछ याद नहीं रहा, क्या २ बातें होती थीं, पर इतना कह सकता हूँ कि कांग्रेस में और बड़े लाट-की कौन्सिल में; व्याख्यान देकर, बड़े बड़े राजा महाराजाओं से मुलाकात करके जो गर्व—जो प्रसन्नता आज नहीं मिलती है, वह उस बातचीत में मिलती थी। जिस दिन वह बात न होती थी उस दिन नींद न आती थी, भोजन न रुचता था छुट्टी का दिन बुरा दिन था। गर्मी की छुट्टियाँ तो काल थीं। उसमें वे पिता के पास चले जाया करते थे। दो महीने का वियोग होता था।

जब वे ज्यादा लाड़ में आते थे 'तू तू' करके बोलते थे। और भी ज्यादा प्यार करते तो घूसों से घड़ते थे। मैं उन्हें कभी न मारता था, उनकी माता पर फरियाद करता था, वे उन्हें धमका कर कहती थीं—"पगले! बड़े भाई से इस तरह बोला करते हैं? ऐसा गधापन किया करते हैं?"

तब वे अपनी माके इतरा कर जवाब देते--"अम्मा ! तेरा बेटा बड़ा बदमाश हो गया है, यह बिना पिटे ठीक न होगा । बुढ़िया झुंझला कर वहाँ से बड़बड़ाती उठ जाती थी, हम लोग खिल-खिलाते, ही ही, हू हू करते, धमर कुटाई करते, अपने रास्ते लगते थे ।

कितनी बार अन्धेरे कमरे में हम एक साथ सोये हैं। कितनी चाँदनी रातें गंगा के उपकूल पर बिताई हैं। कितने प्रभातों की गुलाबी हवा में हमने एक साथ स्वर मिला कर गाया है, दोपहर की चमकीली धूप में स्वच्छन्द विहार किया है। वर्षा ऋतुमें हम जंगल में निकल जाते, माधोदास के बाग़ से एक टोकरा आम भर ले जाते और नहर में जल-विहार करते, आम चूसते--गुठलियों की चांदमारी करते। गर्मी के दिनों में प्रातःकाल ही खेत पर आ बैठते और ताजे ताजे खबूजे खाते। वे प्रायः कहा करते--'तुम मुझसे इतना प्रेम मत बढ़ाओ, मुझे डर लगता है—तुम नाराज हो गये तो मैं कैसे जीऊँगा।' कभी वे मेरे हाल को देखकर कहते—'महाशय ! तेरी उम्र की रेखा तो बहुत ही छोटी है।' मैं देखकर कहता—"अच्छा मैं मर जाऊँगा तो तू रोएगा तो नहीं ?' वे बड़ी देर सोचकर कहते--'रोऊँगा तो जरूर' इसके बाद वे कुछ और कहना चाहते थे- पर मैं समझ जाता था-मुँह भींच देता था, बोलने देता ही न था।

हम लोग कभी झूठ न बोलते थे, कभी छल न करते थे। पर हाँ लड़ कभी कभी पड़ते थे। पर वह लड़ाई बड़े मजे की होती थी। उसमें जो हार मान लेता था—उसी की जीत होती थी और उसी की खुशामद होती थी। जीतने वाले को उसे जंगल में या छत पर लेजाकर गले में बांह डाल कर मिठाई खिलानी पड़ती थी। कभी कभी बड़ा सा गुलाब जामुन मुँह में ठूँस देना पड़ता था। और कभी कभी ? हाँ उसे भी अब न छिपाऊँगा वही गुलाब जामुन आधा उसके मुँह में देकर आधा दांतों से कुतर लेना पड़ता था। हम लोग एक दूसरे को पढ़ाया करते थे। हमारे बीच में कोई न था। हम दोनों एक थे। हममें एक प्राण था, एक रस था, एक दिल था--एक जान थी।

पर यह देर तक रहा नहीं। हृदय से भीतर न रहा गया। वह हवा खाने बाहर निकला। कुछ काम काज का भार भी उस पर पड़ा। बस हवा वह चली, तार टूट गया। मोती बिखर गये। बुद्धि बढ़ गई। अपने को पहचानने लगे। पाजी ज्ञान ने कान भर दिये। डायन बुद्धि ने बहका दिया। हमने अपनी अपनी ओर को देखा। अपनी अपनी सुध ली। उसी क्षण से परस्पर को देखना कम हुआ परस्पर की सुध लेने की सुध ढीली पड़ गई। वही ढील कहाँ की

हाँ ले गई ? न पूछो, कथा का यह भाग बहुत ही कड़ुआ है।

हम लोग अपने अपने रास्ते लगे। अब चिट्ठियों का तार बचा था-वही केवल पुल था। पहली चिट्ठी पूरे १५ दिन में मिली थी। गुलाबी लिफाफा था, वह फट कर चूर चूर हो गया है, पर अब तक सहेज रक्खा है। स्वप्न में भी न सोचा था कि उसकी उम्र उनसे भी बड़ी होगी। कैसा सुन्दर वह पत्र था। सरल तरल प्रेम की वह वस्तु आज तक जीवन को जीवन देती है। फिर तो कितने पत्र आये और गये। अभी तक इतना ज़रूर था--हम लोग बुद्धिमान अवश्य हो गये थे, पर पत्र में बुद्धिमानी को काम में न लाते थे।

तीन साल तक पत्र व्यवहार बन्द रहा। पर समाचार मिलते रहे। दोपहर का समय था। मैं भोजन के आसन पर जाकर बैठा। मेरी स्त्री थाली परस रही थी। एक कार्ड मिला। उसमें उनका मृत्यु समाचार था। मैं मरता तो क्या ? न रोया, न बोला, न भोजन छोड़ा। चुप-चाप भोजन करने लगा। उठकर बैठक में लेट गया। रोना फिर भी न आया। बहुत इरादा किया पर व्यर्थ। हार कर सो गया।

पर अब ज्यों ज्यों दिन बीत रहे हैं, बात पुरानी हो रही है, मैं रोता हूँ। जब अकेला होता हूँ तब रोता हूँ। जब कोई दुख देता है तब रोता हूँ। जब कोई धोखा देता है अपमान करता है

तब रोता हूँ। जब कोई चिन्ता होती है तब रोता हूँ। जब कोई बात हँसी की देखता हूँ तो रोता हूँ। किसी बालक को हरा कोट पहने देखता हूँ तो रोता हूँ। कहीं व्याह होते देखता हूँ तो रोता हूँ। मेरे जीवन के प्रत्येक दैनिक कार्य इसी योग्य हो गये हैं कि बिना रोये उनमें स्वाद ही नहीं आता। हजार जगह रोता हूँ, जन्म भर रोऊंगा।

कभी कभी उन्हें स्वप्न में देखता हूँ, वही स्कूल की पुस्तकों का बण्डल बगल में, वही खिलवाड़ की बातें, वही ऊधम वही ही-ही-हा हा, वही धौलधप सब होता है, हूबहू मालूम होता है! पर! पर आँख खोलकर देखता हूँ तो मालूम देता है—वह सब स्वप्न है। वे दिन बीत गए हैं। अब मैं बड़ा हो गया हूँ जवान हो गया हूँ और अकेला रह गया हूँ। और? और वे मर गये हैं—पृथ्वी पर हैं ही नहीं!

# अतृप्ति

हृदय! अब तुम क्या करोगे? तुम जिसके लिये इतना सज धज कर बैठे थे उसका तो जवाब आ गया। जन्म से लेकर आज तक जो तुमने सीखा था-जिसका अभ्यास किया था, उसकी तो अब जरूरत ही नहीं रही। न जाने तुम्हारा कैसा स्वभाव था। तुम सब कुछ फिर के लिये उठा रखते थे। तुमने तृप्त होकर भी उससे बात नहीं करने दी। आँख भर कर कभी उसे देखने नहीं दिया। मन भर कभी प्यार नहीं करने दिया। तुम यह सब काम फिरके लिये उठा रखते थे। तुम कहते थे

डर क्या है ? कोई ग़ैर तो है ही नहीं, अपनी ही वस्तु है। फिर देखा जायगा। अब कहो—अब भी फिर देखने की आशा करते हो ?

तुम वर्तमान को कुछ समझते ही न थे। तुम उसे स्वप्न कह कर पुकारते थे। कभी कभी उसे छाया कहकर उसका तिरस्कार करते थे। मैं तुम्हें कितना समझाता था—वर्तमान से लाभ उठाओ, वर्तमान दौड़ा जा रहा है। इसे पकड़ लो। पर तुम आलसी की तरह नित्य यही कहते थे—जाने भी दो, वह भविष्य आता है। वही पका हुआ सुख है वही अनन्त है। यह वर्तमान तो मुसाफ़िर की तरह भाग दौड़ में है। इसमें कितना सुख भोगा जाय ? आने दो भविष्य के धवल महल को। वहां तृप्त होकर पीवेंगे और जी भर कर सोवेंगे। लो अब बताओ कहाँ हैं अब वे अट्टालिकाएं ? वह धवल महल ? मैं बहुत भूखा हूँ, प्यासा हूँ, थका हुआ हूँ। मैं अब चलकर रस पीऊंगा और ज़रा सोऊंगा।

क्यों ? सुस्त क्यों हो गये ? ठण्डे क्यों पड़ गये ? चुप क्यों हो गये ? बोलो न, मेरा जी घबड़ा रहा है। तुम्हें देखकर बेचैनी बढ़ रही है। सच कहो मामला क्या है ? तुम्हारे विश्वास पर, तुम्हारी बातोंमें आकर मैंने अपने जन्म-जन्मान्तर की पूंजी लगा दी थी। तुम्हारी योग्यता पर मुझे भरोसा था, मैंने तुम्हें देखा भाला नहीं, कुछ खोज-जाँच नहीं की। तुमने

कहा, आँख कान बन्द करके मान लिया। अब बताओ क्या करूँ? न तब तुम्हारा कहना टाला था-न अब टालूँगा।

बताओ न? अब क्या करूं? चुप क्यों हो? स्तब्ध क्यों बैठे हो? क्या कारबार एकदम फेल हो गया? या दिवाला निकल गया? मैं अब कहीं का न रहा? बोलो न, इस तरह चुपचाप आह भरने से तो न चलेगा।

वे दिन अब भी याद हैं। मानो वही दृश्य-वही समय-वही छटा-वही सब कुछ आँखो में फिर रहा है। पर आँखों के सामने कुछ नहीं है। हाय! कैसी वह नदी थी, कैसा उसपर स्वच्छ चन्द्र और नीलाकाश चमक रहा था, कैसा उसका प्रतिबिम्ब जल में पड़ रहा था, कैसी उसके तट के श्याम छाया रूप वृक्ष और लतायें झुक झुक कर पंखा कर रही थीं। और तुम मुझे कुछ भी पेट भरके देखने नहीं देते थे। जब मैं चन्द्र को देखता था तब तुम कहते—नहीं, पहले इस जल की छटा को देखो। जब मैं उसे देखता था-तब तुम कहते—नहीं पहले इस निकुंज छाया को देखो। मैं जब उसे देखता तब तुम कहते थे—नहीं, पहले इस छप छप शब्द को सुनो। फिर तुम मेरी आँखें बन्द कर देते थे। मुझसे तुम्हें क्या जलन थी? सुख से तुम्हें क्या चिढ़ थी? तृप्ति से तुम्हें क्या द्वेष था?

तुम्हारी वह कुलबुलाहट...चुलबुलाहट...कहाँ गई ? अब क्यों इस तरह सुस्त सिर नीचा किये बैठे हो। मेरे सर्वनाश-कारी वंचक ! मैं तुम्हें दया करके छोड़ूँगा नहीं।

किसी की भी नहीं सुनते थे, ऐसे धुन के अन्धे हो गये थे। हँसी रुकती ही न थी, चैन पड़ता ही नहीं था। इतना रोका था, धमकाया था, फटकारा था। पर सब चिकने घड़े पर पानी की तरह ढल गया ? लो अब बैठे बैठे रोओ।

# दुःख

यह असम्भव है। मैं आपसे ब्याह नहीं कर सकती। मैं बहुत दुःखी हूँ। मुझे क्षमा कीजिये। मैं भीतर ही भीतर रोगिणी हो रही हूँ। डाक्टर ने कहा है कि तुम × × × नहीं नहीं, मैं वह बात आपको अपने मुँह से नहीं सुनाऊँगी। आप मेरा मोह त्याग दीजिये। भूल जाइये। यह कठिन है, पर अभ्यास बड़ी वस्तु है। मैंने अभ्यास किया है, आप भी कीजिये। हम लोग बहुत देर में मिले। समय बीत चुका था। सुख और शांति यह मेरे भाग्य में नहीं थी। क्योंकि मेरा बूढ़े से ब्याह होता

और क्यों मैं सुहाग की रात को विधवा होती। मैं इतना भी सहती– वहुत स्त्रियाँ सहती हैं। पर आप क्यों मिल गये! यही कठिन हुआ। यही नहीं सहा जाता। आग जल रही है। जी जला जाता है—पर धैर्य और अभ्यास से वश में करूँगी। यह सच है कि सुख में प्रलोभन है, पर मैंने उसे चखना एक ओर रहा—छू कर भी नहीं देखा। यही खैर हुई। वरना क्या होता? आज क्या यह पत्र लिख सकती? मन इतना साहस कहाँ पाता? आँसू आ रहे हैं, शरीर का रक्त मस्तक में इकट्ठा हो रहा है और नसों की तन्त्री झनझना रही है। रह रह कर मन में आता है इस पत्र को फाड़ दूँ। पर यह असम्भव है। इतनी हिम्मत से—इतने साहस से—इतनी वीरता से जो पत्र लिखा है उसे फाड़ूँगी नहीं। क्या आप इसका मूल्य समझेंगे?

मैं समझती हूँ इस पत्र को पढ़ कर आपको वेदना होगी। पर क्या किया जाय? उसे सह लीजियेगा—मेरी ओर देख कर सह लीजियेगा। मैं अवला स्त्री हूँ। मुझमें दम ही कितना है! बचपन में पशु पक्षियों को चार दाने डालकर मुझे कितना गर्व होता था। मैं कितनी इतराती थी! यहीं तक मैं दुनियाँ में किसी को सुख दे सकी। मेरी सेवा का पृथ्वी पर यही उपयोग

हुआ। मेरा मानव जीवन धिक्कार हुआ। पर मुझे यह कभी न मालूम था कि ऐसा उत्तरदायित्व भी तुच्छ स्त्रियों पर आ जाता है। अनेकों की रक्षा में समर्थ आप? आपका सुख दुःख मेरे हाथ में? नहीं नहीं मुझे इतना न दबाइये। इतना बोझ सहने की शक्ति मुझमें नहीं है। मूर्खा अबला में और कितना बल होगा? आप कहें—तो मैं आपका नाम लेकर गङ्गा में डूब मरूँ, या नाम जप जप कर भूखी प्यासी मर जाऊँ। जरूरत हो तो चमड़ी की जूती बनवा लीजिये। मोल बेच दीजिये। पर! पर मुझसे सुख मत माँगिये, मुझसे सहयोग न होगा। सुख एक तो मेरे पास है ही नहीं—दूसरे, जो है भी-वह जूठा, ठण्डा और किरकिरा है—आपके योग्य नहीं है। आप उधर से ध्यान हटा लें वह मोरी में फेंकने योग्य है। क्या वह मैं आपको दे सकती हूँ? उससे तो यही अच्छा है कि आप उसके बिना ही दुखी रहें।

मैं अपने भाग्य पर फिर हाय करती हूँ। कोई चारा नहीं, कोई बस नहीं, कोई उपाय नहीं। मैं जानती हूँ आप स्वभाव से ही दीन दुखियों को प्यार करते हैं, आप धन्य हैं। मैं भी आपको प्यार करती। पर क्या करूँ प्यार में तो चाहना है और

रक्त ठण्डा पड़ गया, जीवन का पता नहीं—क्या इरादा रखता है। भविष्य की रात घोर अंधेरी है, उसमें एक तारा भी नजर नहीं आता। वर्तमान अत्यन्त क्षणिक है-पर उसके रोम रोम में विकलता है। मन जैसे सूख गया है और मैं जैसे खो गया हूँ।

उस दिन के बाद ही सोचा था-बस अब सँभल गया, अब तक ठगाया गया हूँ, अब न ठगाया जाऊँगा। काम का त्याग कर दूँगा, वासना को धक्का दे डालूँगा, चाह का गला घोंट दूँगा, हृदय को फाँसी लगा लूँगा, और चुपचाप निश्चेष्ट भाव से मृत्यु के दिन की बाट देखूँगा। किन्तु यह सब कुछ तो किया, कर्म भी त्यागा,-वासना को भी धक्का दिया, चाह का भी गला घोंटा, हृदय को फाँसी लगाई, पर चुपचाप निश्चेष्ट भाव से मृत्यु के दिन की बाट न जोह सका। इन सबके साथ स्मृति को भी यदि संखिया दे सकता तो यह सब सफल होता। अब सब बनने पर भी स्मृति बीच में आकर काम बिगाड़ देती है। वह मेरी उजाड़ और ठण्डी शान्ति में आग लगा देती है। मैं चुपचाप-निश्चेष्ट मन से मरने के दिन नहीं पूरे कर पाता हूँ।

वह दिन मुझे याद है—अच्छी तरह याद है, उस दिन मेह बरस रहा था—पर मूसलाधार पानी न था। रिमझिम वर्षा थी। उस दिन, हाँ उसी दिन उसने मुझे देखा-या मैंने उसे देखा

कुछ याद नहीं। शायद दोनों ने दोनों को देखा। उस देखने ही में विष था, पर हमने उसे अमृत समझा। हाँ, दोनों ने अमृत समझा। भूल हुई। उसी दिन हम मर गये थे, पर समझा जी गये हैं। उसी दिन धोखे में हम दोनों मुस्कराये थे ! आह ! मूर्खता !

वह कुछ बोली नहीं। लजा कर चली गई। मैंने मन में कहा-कैसी अपूर्व है, कैसी अलौकिक है। तब मैं निर्लज्ज की तरह उसकी ओर देखता ही रहा। उसने मेरी निर्लज्जता देखी नहीं, जाने के बाद उसने पीछे फिर कर देखा ही न था। मुझे उस ओर ध्यान न था। जाती बार जो वह मुस्कुराहट बखेर गई थी, उसी पर मैंने आँखें बिछा दीं।

उसके बाद क्या हुआ था ? ठहरो, सोचता हूँ—हाँ उसके बाद एक दिन पान का बीड़ा देने आई थी। वह बीड़ा अभी तक मेरे बक्स में रक्खा है। तब खाया नहीं था। उस समय मैंने उसे प्रिय चिन्ह समझ कर रख लिया था। यह सोचा भी न था कि यह मेरा चिरसहचर होगा। कदाचित् वह मेरा भविष्य फल था, अथवा इतिहास था। क्योंकि जब वह मेरे हाथ में आया था—हरा भरा और रसपूर्ण था। सुगन्ध की लपट के मारे दिमाग़ मुअत्तर हो रहा था। किन्तु ज्यों ज्यों

उसका रस सूखता गया, त्यों त्यों उसमें मेरी समता होती गई। आज उसमें रसगन्ध नहीं है, बिल्कुल सूखा पत्ता है। मैं भी रसगन्धहीन सूखा-बिल्कुल सूखा पत्ता हूँ। मेरे जीवन में और उस पान में यह समता होगी, इसका मुझे कुछ भी आभास नहीं था—उसे भी नहीं था।

उसके पति पर मैं सदा से नाराज़ था। वह मेरा मूर्ख चपरासी था। किन्तु भोला, सच्चा और हँसमुख। मेरी झिड़की को हँस कर सह लेता और हाथ जोड़ कर क्षमा मांगता था। इसी से वह निभ रहा था। पर उसी बदली के दिन से उसके दिन फिरे। उसपर मेरी कृपादृष्टि उमड़ आई। मैंने अपनी स्त्री के द्वारा सुना कि वह इस भाग्यपरिवर्तन का कारण अपनी स्त्री को समझता है! बात सच थी, मैं लज्जा से धरती में गड़ गया। पर असल बात और थी–वह पीछे खुली, उसका यह विश्वास था कि मेरी स्त्री बड़ी भाग्यवान् है; उसके गौना होकर घर में आते ही मालिक की कृपादृष्टि और वेतनवृद्धि हुई, वह उसे लक्ष्मी के नाम से पुकारने लगा था। पहले उसके विचार पर आश्चर्य हुआ था, पर अब उसका कोई कारण न रहा।

वह बुढ़िया, ओफ-उसका स्मरण आते ही दम घुटने लगता है मुद्दत से मेरे पास आती थी। कभी पैसा मांगने और कभी

पुराना कपड़ा मांगने। वह मुझे बड़े मीठे स्वर से 'बेटा' कह कर
पुकारती थी, पर मेरे हृदय में उसके लिये कभी मातृभाव उदय
नहीं हुआ। उसकी सूरत ही ऐसी थी। छोटी छोटी सांप जैसी
आंखें, सिकुड़े हुए अपवित्र होंठ और बिल्ली जैसी चाल-मुझे
भाती न थी! मैं सदा उससे दूर भागता था। फटकारता, गाली
देता, पर वह अपनी लल्लो पत्तो नहीं छोड़ती थी। उस दिन
उसके बाद ही वह आई थी। वह प्यार की पुतली थी और यह
घृणा की डायन। दोनों में कुछ भी तारतम्य न था। पर मेरी
बुद्धि चैतन्य हुई या मलिन, कुछ नहीं कह सकता—मैंने तार-
तम्य निकाल लिया। ठीक कीचड़ और कमल के समान। उस
दिन मैं उसे देख कर मुस्कुराया, एक चवन्नी बखसीस दी।
उसने अपनी मनहूस आंखों की धुन्ध पोंछकर एक बार चवन्नी
की ओर और एक बार मेरे मुस्कुराने की ओर देखा, मैंने उसे
पास बिठाया, बहुत सी बातें कीं, नहीं—नहीं उन्हें चेष्टा करके
भुलाया है। अब याद नहीं करूँगा। उन बातों की परछांई, ठीक
अँधेरे में दीये की लौ की तरह आज भी मेरे मनोमन्दिर में कांप
रही है। उसी के द्वारा सब कुछ हुआ, उसी छुरी से मैंने सेंध
लगाई। उसी के हाथों मैंने वह छकड़ा भरा रूप, मनों यौवन
खरीदा। चोरी का माल था-सस्ता ही मिला। कुछ मिठाई
के दोनें, कुछ सुगन्धित तेल, कुछ साधारण वस्त्र, बस।

उस दिन जब उसने आत्मसमर्पण किया था—वह मदराती थी—पर उसकी आँखों में आँसू थे। वह पाप से डर रही थी। थर थर कांपती थी। प्रलोभन बहुत ही भारी था। वह जीत न सकी, हार गई। उसकी चाह में ग्लानि मिली थी। हर्ष में भय था, विष था। कलेजा धड़क रहा था और बदन काँप रहा था। मैंने इसकी परवाह न की। मेरी प्यास भड़क रही थी। रस निकट ही था। मैंने उसे भुलाने को बहुत सी बातें कहीं थीं वे सब झूठी थीं। पर उसने उन पर विश्वास कर लिया था। वह अन्त में एक क्षण को मुस्कुराई भी थी।

पर मैं उसे खिलखिला कर हँसा न सका। इधर मेरा ध्यान न था। पहले ही मैं छक गया। वह निमन्त्रण में न्योते हुए ब्राह्मण की तरह प्रेम और अधिकार की प्रतीक्षा में बैठी रही। वह मुझे दिल से चाहती थी यह बात तब भी मालूम थी—पर तब इस बात का मन ने मूल्य नहीं लगाया था।

उस दिन त्रयोदशी थी। ठीक याद है, फाँसी की तारीख की तरह। वह भविष्य होती है—यह भूत थी। कोई ६ बजे होंगे। मन्द वायु बह रही थी। रात दूध में नहा रही थी। आकाश हँस रहा था। वह मेरे भेजे हुए फूलों के गजरे पहिन कर आई। चाँदनी ने उसके मुख को और भी उज्ज्वल कर दिया था। मैं

उसकी ओर देख रहा था और वह भय से चारों ओर देख रही थी। उसका स्वामी तब भी मेरा नौकर था।

उस समय मैं प्रेम का कङ्गाल नहीं था। मेरे घर में प्रेम सरोवर लहरें मार रहा था। वह प्रेम नहीं, पाप था। तब मैंने पाप की परवाह न की। मैंने उसे देख कर भी न देखा। उस समय उसे देखे बिना कल नहीं पड़ती थी। आज उसे सोचकर काँप उठता हूँ।

जब वह गर्मागर्म थाल मेरे भोग में था, तब एक दिन, उन दिनों उसका पति मेरा नौकर था—मैंने उससे कुछ उसका ज़िक्र किया था। शायद याद नहीं—उसने क्या कहा था, पर भाषा उसकी गँवारू और अलंकारशून्य थी। फिर भी उसमें उत्कट स्त्री व्रत और स्त्री प्रेम का वर्णन था। इतना मुझे याद है कि अपनी स्त्री का ज़िक्र करते करते उत्फुल्लता के मारे उसकी आँखों में आँसू आ गये थे। मुझे इस बात के प्रारम्भ में जो सुख मिला वह तत्क्षण ही विलीन हो गया। उसी दिन मैंने अपने को तुच्छ समझा उसी दिन मनमें अनुताप का बीज उगा। उसके बाद ? उसके बाद ही उसने मुझे पहचाना। प्रथम उसने मौन कोप किया, पीछे अवज्ञा की, तदनन्तर गुस्ताख़ी की और अन्त में उसने सामना किया। निदान मैंने अपनी क्षमता से

काम लिया—मैंने उसे जूतों से पिटवाकर निकलवा दिया। हाय !!

अब कुछ कण्टक नहीं था। लोकलज्जा भी नहीं थी। आँख फूट चुकी थी। मैं दोनों हाथों से खाने लगा। पर सब खाया नहीं गया। बहुत था। जितना पेट में समाया खाया। बाक़ी ? जिस तरह बच्चे आवश्यकता से अधिक पाकर—पेट भरने पर इधर उधर बखेर देते हैं--उसी तरह-वह रूप—वह योवन--मैंने भी बखेर दिया।

घर में रखने को जगह न थी। वह मुद्दत तक ठोकरों में पड़ा रहा। उससे रुचि हट गई। उस पर मक्खियां भिनकने लगीं। मैंने उसे, हाँ हाँ—उसे, उठवा कर बाहर फिकवा दिया! ओफ़ ! ! !

फिर बीच में भेंट नहीं हुई। केवल मरने से प्रथम मैं उसे उसका सन्देश पाकर देखने गया था। वह खानगी वेश्याओं के मोहल्ले में-नीचे के खन में--एक सील और दुर्गन्ध भरी कोठरी में पड़ी थी। शरीर मलमूत्र में लथपथ हो रहा था। कोने में एक मिट्टी का घड़ा लुढ़क रहा था, भीतर उसमें पानी था, और ऊपर ओग बह रहे थे। गूदड़े गीले और मिट्टी जैसे थे। उसका शरीर जल रहा था, उसपर ओढ़ना नहीं था। घर में

नरक का बास था। मैं नाक दबा कर मन मार कर उसके पास गया। उसने मेरी ओर से मुँह फेर लिया, बोली नहीं। मैं कुछ न कह सका। मैंने थोड़ा पानी लेकर उसे पिलाना चाहा, पर उसने सतेज स्वर में कहा—"पापी-विश्वासघाती-छलिया-हट, परे हो, काला मुँह कर, मैं तेरे हाथ का पानी नहीं पीऊँगी।" मैं कुछ भी न कर सका—मर भी न सका। वह मर गई।

उसके बाद ? उसी महीने में मेरे घर का दिया बुझ गया। जिस दिन मेरा बच्चा मुझे मिला-उसी दिन मेरी स्त्री चल बसी। मैंने रात भर जाग कर, रोकर, बच्चे को जीवित रक्खा।

एक दिन मैं बैठा अपने बच्चे को खिला रहा था। एक आदमी आया। उसकी सूरत भूत जैसी थी। दाढ़ी के बाल बढ़कर उलझ गये थे। आँखों में कीचड़ भर रही थी और मुख से लार टपक रही थी। शरीर पर वस्त्र नहीं था, केवल एक चिथड़ा था। लड़के पीछे धूल फेंक फेंक कर हल्ला मचा रहे थे। वह मेरे पास आकर बच्चे को घूरने लगा, बच्चा डर कर मेरी छाती से चिपक गया। मैंने उस पागल को फटकारा। वह मेरी ओर देख कर कुछ बड़बड़ाया। मैंने उसे पहिचान लिया। कलेजा धक् हो गया, रक्त की गति रुक गई। मैंने कुछ पैसे

उसकी ओर फेंक दिये और उससे कहा—जाओ जाओ। पैसे लेकर उसने लड़कों को लुटा दिये और फिर मेरे बच्चे को घूर घूर कर बड़बड़ाने लगा। बच्चा रो उठा मैं भीतर चला आया। मेरे घर तब कोई नौकर न था। उसी रात को बच्चा रोगी हुआ और उसके तीन दिन बाद वह भी ठंडा हो गया। मरती बार वह भी मुस्कराया था।

मैंने घर-बार-देश सब त्याग दिया है, पर जिस स्मृति को त्यागना चाहता हूँ उसे किसी तरह नहीं त्याग सकता हूं--किसी तरह नहीं त्याग सकता हूं!

# शोक

यह मेरा पहला ही बच्चा था। जब यह उत्पन्न हुआ था तब मेरी अवस्था २३ वर्ष की और मेरी स्त्री की १७ वर्ष की थी। प्रातःकाल ज्योंही ऊषा की पहली किरण पृथ्वी पर पड़ी, त्योंही बिट्ठुआ का अवतरण हुआ। उस रातभर मैं सोया नहीं था। नई बात थी, नया उछाह था, नया सुख था। मैं दौड़ दाई के घर, दौड़ सौर गृह में, दौड़ बैठक में फिर रहा था। काम कुछ न था। पर बिना दौड़ धूप किये जी न मानता था। जब दाई ने आकर कहा कि "बख़्शीश लाओ, बेटा हुआ,"

तो मेरे शरीर में खून की गति रुक गई थी—मैं उसे एकटक देखता ही रह गया था। मैंने हारकर उसी से पूँछा था-"बोल क्या लेगी?" और माता ने आकर अपना कंगन उसे दे डाला था।

उस घटना को आज पूरे ७ महीने १३ दिन हुए हैं। आज मैंने उसे धरती में गाड़ दिया। मेरे साथ मेरे और दो तीन बन्धु थे। सबने जी जान से सहायता दी। एक ने गढ़ा खोदा, एक ने उस में से मिट्टी निकाली. एक ने मेरे लाल को उसमें रख दिया। फिर उसके ऊपर सबने जल्दी जल्दी मिट्टी डाल दी। उनका कहना था--ऐसे काम में भी यदि वे सहायक न हुए. ऐसे मौकों पर ही यदि उन्होंने तत्परता न दिखाई तो उनकी मित्रता ही क्या? उनका बन्धुत्व फिर किस काम आवेगा?

परसों शाम को जब मैंने उसे देखा था, तब वह मुझे देखकर हँसा था, अपने नन्हें नन्हें हाथ उसने ऊपर को उठाये थे। पर मैंने उसे गोद में लिया नहीं। मुझे डर था कि बुखार कहीं फिर न चढ़ जाय। पर बुखार चढ़ा और जब उतरा तब बचुआ भी उतर गया। मैं व्यर्थ ही डरा—गोद में भी न ले सका! कुछ तो सुख मिलता, कुछ तो तसल्ली होती। उसके बाद वह फिर न हँसा। आज वह बिलकुल सफ़ेद हो गया था। आँखें आधी बन्द थीं—सांस नहीं था-शरीर गर्म

था-हाथ पैर नर्म थे-स्त्री रो रही थी-मित्रगण कफन लपेट रहे थे-पर मैं दौड़ा गया, डाक्टर को बुला लाया। मैंने दाँत निकाल कर, रिरियाकर उससे कहा—"डाक्टर साहेब! फ़ीस चाहे जितनी ले लीजिये, पर इसे एक बार अच्छी तरह देख दीजिये, क्या यह बेहोश हो गया है? शरीर देखिये कितना गर्म है।" डाक्टर ने करुण दृष्टि से मेरी ओर देखा, प्रेम से मेरे कंधे पर हाथ रख कर कहा मर्द हो! मर्द की तरह विपत्ति में धैर्य धरो, शोक में स्त्रियों की तरह घबराओ मत, व्यर्थ की आशा और मृगतृष्णा को छोड़ दो। भगवान् की इच्छा पूरी होनी चाहिए। और वह पूरी हुई।

मेरे हाथ पांव टूट गये। दिल बैठ गया, पर मैं खड़ा रहा। मैंने आवाज़ करारी रक्खी--आंसू भी नहीं गिरने दिया-पर मन नीचे को धसकने लगा। मित्रों ने कहा--चलो, खड़े क्यों हो? मैंने कहा—चलो। मैंने ही उसे हाथों पर रखा था—वह फूल की तरह हलका था!

आसमान का इतना ऊँचा जीना वह कैसी सरलता से चढ़ गया? याद से दिल की धड़कन बढ़ती है। जिगर में दर्द उठता है। गई--वह चाँद सी सूरत गई--वह आँख का नूर गया—वह हृदय की तरावट गई—वह गई—वह होठों की लाल रंगत, वह

मुस्कराहट-वह-वह वह-वह सब चली गई ! ! चली गई ! ! जैसे फूल से सुगंध उड़ जाती है, जैसे नदी का पानी सूख जाता है, जैसे चन्द्र ग्रहण पड़ जाता है, ? जैसे ?-ठहरो सोचता हूँ· जैसे ? नहीं कुछ याद नहीं आता। जैसे !...हाँ ! जैसे दिये का तेल जल जाता है--वैसे ही उसकी नन्हीं सी जान निकल गई थी।

मेरी स्त्री ने कहा—कहाँ रख आये ? इतनी सर्दी में ? उस गीली मट्टी में ? अक्ल तो नहीं मारी गई ! जो बचुआ को सर्दी लग जाय ? ये गदेले और रजाई तो यहाँ पड़ी हैं। जो बचुआ की हड्डियों में ठण्ड बैठ जाय तो क्या खाँसी दम लेने देगी ? इसीलिये तुमको दिया था ? ठहरो मैं लिये आती हूँ। वह पागल की तरह दौड़ी। मेरे सिर में कई गोलियाँ सी लग रही थीं। भतीजी ने कहा·कहाँ हैं भैया ? चाची ठहर ! मैं लाती हूँ—चलो बताओ कहाँ है ? बूढ़ी माँ बोली नहीं। रो रही थी, रो रही थी, रो रही थी, चुप,-मौन-रो रही थी। चुपचाप ही उसने बेटी को छाती से लगा लिया। मैं स्त्री को कुछ न कह सका। वह मेरे पैरों पर पड़ी थी-मैं मानों आस्मान की ओर उड़ रहा था-आँखें निकली पड़ती थीं-दम घुट रहा था—मैंने

कमीज का बटन ज़ोर से तोड़ डाला। मैं खम्भे का सहारा लिये खड़ा रहा।

वह एक बार फिर मिला। सन्ध्या काल था और गङ्गा चुपचाप बह रही थी। वह चाँदी सी रेती में फूल जमा करके कुछ खेल सा रहा था। मैं कुछ दूर था। मैंने कहा—आ-मेरे पास आ। उसने ताली पीटकर कहा—ना, मेरे पास आ। मैं गया। वहाँ की हवा सुगन्ध से भर रही थी। मैं कुछ ठण्डा सा होने लगा। उसके चेहरे पर कुछ किरणें चमक रही थीं। मैंने कहा-"विटुआ! धूप में ज्यादा मत खेलो।" उसने हँस दिया। सुन्दरता लहरा उठी। उसने एक फूल दिखा कर कहा—"अच्छा इस फूल का क्या रँग है?" मेरा रक्त नाच उठा। अरे! बेटा तो बोलना सीख गया। मैंने लपक कर फूल उसके हाथ से लेना चाहा, वह और दूर दौड़ गया—उसने कहा—"ना, इसे छूना नहीं। इस फूल को दुनियाँ की हवा नहीं लगी है और न इसकी गन्ध इसमें से बाहर को उड़ी है। ये देव पूजा के फूल हैं—ये विलास की सजाई में काम न आवेंगे।" इतना कह कर विटुआ गङ्गा की ओर दौड़ कर उसी में खो गया। मैं कुछ दौड़ा तो—पर पानी से डर गया। इतने में ही आँख खुल गई। घुप अन्धकार था। हाय, वह स्वप्न था! वह भी आया और गया? अब?-

# चिन्ता

क्या मैं ऐसा था ? मेरा चेहरा ऐसा था ? यही मेरा शरीर था ? मेरी माता होती तो उससे पुछवाता ? कैसा कुन्दन सा रंग था कैसा माँसल शरीर था। ताऊ जी कहा करते थे—लड़के को किसी भिड़ ततैये ने तो नहीं काट खाया है ? ताई उन्हें फटकार कर कहती थीं—वाहजी ! खबरदार जो मेरे छोरे को नजर लगाई है। लाल सिंदूरिया रंग था—आँखें माँस में घुस गई थीं। स्कूल मास्टर के हजार डाटने पर भी हँसी नहीं रुकती थी। पिता बार बार कहते—अरे बेटा ! गम्भीरता से रहो, हर समय

नहीं हँसा करते। माता ने नाम रक्खा था 'चटोरदास।' खट्टा मीठा-ताजा बासी जो सामने आता, सामने आने की देर थी खाने की नहीं। और नींद ? नींद का क्या पूछते हो ? उधार खाये बैठी रहती थी। खाते खाते सो जाता था-सुना आपने ? खाते खाते। मौज थी जो हृदय में उमड़ रही थी-बिजली थी जो नस नस में भर रही थी। हाय! कहाँ गये वे दिन ? मेरे बचपन के दिन ? वे सुनहरे, प्यारे दुलारे दिन ? वे दग़ाबाज़ दिन ? किस गड्ढे में मुझे धकेल गये ? जवानी ? बुरा हो इस जवानी का, ईश्वर किसी को न दे यह जवानी। मेरा नाश बन कर छाती पर चढ़ी है, और अब काल बन कर सिर पर मँडरा रही है। डायन न खाने देती है न सोने देती है-न चैन से साँस लेने देती है। कुलच्छनी कुलटा अपनी ही ओर देखती है अपनी ही ओर। यह गत तो बन गई है, पर मरी नहीं, हैजा नहीं हुआ—इसे काल नहीं आया। मक्खियाँ तो भिनकने लगी हैं—गलियारे में पड़ी रहती है। आँसू पीती है, और ग़म खाती है—फिर भी जवान बनी हुई है-उफ़ है—तुफ़ है !

कहाँ गई वह नींद ? वह भूख ? वह हँसी ? वह मौज ? बैठा रहता हूँ तो सिर में विचारों की रई चलती रहती है, लेटता हूँ तो खून की बूँदें नाचती हैं, सोता हूँ तो स्वप्नों का ताँता बँध जाता है, खाता हूँ तो खाना ही मुझे खाने लगता है. करूँ

क्या ? उद्धार का—छुटकारे का—कोई भी तो उपाय नहीं दीखता। कुछ भी तो नजर नहीं आता। क्या मरना पड़ेगा ? अभी से ? इतनी जल्दी ? अभी तो इच्छा नहीं है। पिता जी इस उम्र में मेरे पिता भी नहीं हुए थे। ताऊ जी अभी जीवित हैं ! मैं अभी से क्यों ? पर इस तरह तो निर्वाह होना कठिन है-मजबूरी है। अच्छा मरूँगा। मजबूरी है।

पर मौत है कहाँ ? उसका दफ्तर भी कहीं ढूँढना होगा। उसके मुनीम गुमाश्ते चपरासी-इन्हें हक़ देना होगा ? यह तो क़ायदे की बात है ! यह देखो गालों की हड्डियाँ निकल आई हैं—माथे में गढ़ा पड़ गया है। आँखें गढ़ों में धँस गई हैं—चेहरे पर स्याही दौड़ गई है-शायद वह आ रही है-पर हाय ! हाय ! मैं तो मरने से पहले ही कुरूप हुआ जाता हूँ।

आशा ने कितने झाँसे दिये थे, उत्साह ने कितनी पीठ ठोकी थी, मनने कितनी हिम्मत बाँधी थी—सब सटक सीताराम हुए। सब खसक गये। बनी के सब साथी थे। अकेली जवानी कबतक चलेगी ! वे हवाई मृगतृष्णा निकले। सब से बाजदावा देने को तय्यार हूँ—पर निकलना कठिन है, गुनाह बेलज्ज़त ! मरना झपना सब औरों के लिये...तिस पर कृतज्ञता का पता नहीं-जिक्र भी नहीं। मार डाला, अधमरा कर

डाला, प्राण निकलें तो प्राण बचें ! ठहरो-अभी खाने की इच्छा नहीं है। ना-अभी नहीं सोऊँगा। सोचने दो, हटो–सब भागो, कोई मेरे पास मत आओ-मेरा ध्यान मत भंग करो, मैं कुछ सोच रहा हूँ। हटाओ, इस बच्चे को हटाओ वरना तमाचा मार दूँगा। मुझे कोई अच्छा नहीं लगता। स्त्री बीमार है तो भाड़ में जाय। बाप मरता है तो मरे। बहन भीख माँगती है तो माँगे। मैंने क्या सबका ठेका ले रखा है ! हटो हटो—मगज मत खाओ। मुझे एकान्त में छोड़ दो—मुझे सोचने दो–मुझे कुछ सोचने दो—जरूरी काम सोचना है। ओफ़ ! सिर घूमता है। ओफ़...ओफ़ !

# लोभ

बहुत करेगा मार लेगा, गाली दे लेगा, चार आदमियों में फ़जीहत करेगा। बस ? इससे तो हद है ? कोई फाँसी तो दे नहीं सकता ? मैं तो कौड़ी का देवाल हूँ नहीं। इधर की धरती उधर हो जाय। सूरज साला पच्छिम में उगने लगे-प्रलय हो जाय, पर इनमें तो दाँत गढ़ने दूँगा नहीं। अजी "जान है तो जहान है और ज़र है तो दुनिया घर है।" कुछ यहीं तो नाल गढ़ा ही नहीं है, अच्छों अच्छों के वतन छूट जाते हैं। अच्छों अच्छों को परदेश रहना पड़ता है इसमें पशोपेश क्या ? काम बनाया और सटक सीताराम। कहा भी है—"देश चोरी

और परदेश भीख।" कौन पूँछता है? सब इसी की पूजा करते हैं। इसी का सारा नाता है—इसकी गर्मी ही मज़े की गर्मी हैं सच कहा है किसी ने—"धरा पाताल और दिपे कपाल।" इसी की इज्ज़त, इसी का बल, इसी का सारा कारबार है। है। यही न रहेगा तो शरीर क्या काम आवेगा? कौन खरा है? मुँह बनाकर सामने आवे। सबको जानता हूँ। कमा कर कौन धनी बना है? राम कहो "घर आये नाग न पूजिये, बाँबई पूजन जाय।" मैं ऐसा अहमक़ नहीं हूँ। भगवान् ने घर बैठे लक्ष्मी भेजी है—तो मैं क्या ढकेल दूँ? वाह! यह खूब कही। सब के यहाँ इसी तरह चुपचाप आती है। गा बजा कर किसके गई है? लोग तो खून तक करते हैं! हाँ खून, इसी के लिये। मैंने किसी का गला तो नहीं काटा? जो होगा देखा जायगा। मुझे इतना कच्चा मत समझना—आठों गाँठ कुम्मेत हूँ। इसी को प्रारब्ध कहते हैं। बिना कमाये आवे और बे लाग आवे। और यों थोड़े बहुत झापट झगड़े तो लगे ही रहते हैं। थोड़ा कसा रहना चाहिये—सब संकट कटेंगे। माल क्या थोड़ा है? अच्छा गिन कर देखूँ। नहीं, यह शायद ठीक न होगा। कोई देख ले तो? अभी मामला रफ़ा दफ़ा तो होने दो। कहीं भागा थोड़ा ही जाता है—यह तो प्राण से भी बढ़ कर प्यारा है। यही स्वर्ग है—यही भगवान् है—इसी के पीछे

भटक रहा था-आज मिला है—आओ ! भगवान् ! आओ मेरे बाप ! आओ मेरे बुजुर्ग ! मेरे कुलदेव ! वंशोद्धारक ! आओ-आओ आओ ! मेरी छाती को ठण्डी करो ! तुम में विश्वासघात का विष्ठा लगा होगा तो मैं तुम्हें धोलूँगा। तुम में छल का दाग़ होगा तो रगड़ दूँगा। किसी तरह आये तो ! आओ-आओ-आओ। आओ मेरे इष्टदेव ! आओ।

# क्रोध

सिर्फ हज़ार रुपये ही की तो बात थी ? वह भी नहीं दे सका ? देना एक ओर रहा—पत्र का उत्तर तक नहीं दिया। एक-दो-तीन-चार-सब पत्र हज़म किये ? सब पचा लिये ? यही मित्रता थी ? मित्रता ? मित्रता कहाँ है ? मित्रता एक शब्द है, एक आडम्बर है, एक विडम्बना है, एक छल है—ठीक छल नहीं छल की छाया है। वह भूत की तरह बढ़ती है, रात की तरह काली है, और पाप की तरह काँपती है।

तुम लखपती थे ? वे तुम्हारे लाख रुपये सुरक्षित लोहे के

सन्दूकों में बन्द रखे हैं? और मैं? हाड़ माँस का आदमी, जिसकी छाती में हृदय—जीवित हृदय, धरोहर धरा है—इस तरह यातमा—अपमान—कष्ट और भयङ्करता में झकोरे ले रहा हूँ? मित्रता की ऐसी तैसी, मित्रता के बाप की ऐसी तैसी! निष्ठुर पाखण्डी सोने के डले! बिना तपाये और कुचले तुझमें नर्मी आना ही असम्भव था!!!

तुम! तुम मेरे भक्त थे; क्या यह सच है? भक्ति किसे कहते हैं मालूम है? चुप रहो, बको मत, ज्ञान मत बघारो, मैं ही मूर्ख हूँ। मेरे उपदेशों को तुमने मनोहर कहानी समझा होगा! ठीक, अब समझा, तुम मनोरंजन ही के लिये मेरे पास आते थे! धीरे धीरे अब सब दीख पड़ता है। जब मैं आवेश में आकर अपने आविष्कृत सिद्धान्त ज़ोर शोर से तुम्हारे सामने बोलता था, तब तुम हँसते थे। उस तुम्हारी हँसी का तब मतलब नहीं समझा था, अब समझा। उफ़, ऐसे भयंकर गम्भीर सिद्धान्तों को तुम मनोरंजन समझ कर सुनते थे? ठीक है। पिशाचों को श्मशान में नृत्य ही की सूझती है। प्रकृति कहाँ जायगी! पर मुझे मनुष्य की परख नहीं हुई, मैं पूरा वज्रमूर्ख हूँ। मैंने भैंस के आगे बीन बजाकर सुनाई थी—हाय क़रम! हाय तक़दीर!!!

कुछ भी समझ नहीं पड़ता। अचम्भा है। मनुष्य रूप

पाकर मनुष्य हृदय से शून्य कैसे जीते हैं ! अमीरों के हृदय कहाँ हैं ! सारे अमीर मर कर भेड़िये, साँप, बिच्छू बनेंगे ! ये मनुष्य-जन्म में अपनी बुद्धि से जिस रूप का अभ्यास कर रहे हैं, वही रूप इन्हें मिलेगा ! वाह ! बड़ा अच्छा तुम्हारा भविष्य है । मैंने सुना है--पुराने खज़ानों में सांपों का पहरा होता है। तुम सब धनी लोग वही साँप हो । फ़र्क इतना है तुम सब बनने वाले हो और वे बन गये हैं- वे तुम से सिर्फ एक जन्म आगे हैं । उनके तुम्हारे बीच में केवल एक मृत्यु का पुल है। उसे पार किया कि बस असली रूप पा गये ।

हे सफ़ेद पगड़ी और सफ़ेद अँगरखे वालों ! हे टमटम, मोटरगाड़ियों में खिचड़ने वालों ! हे अपाहिजों ! अभागों ! रोगियों ! निपूतों ! हीजड़ों ! तुम पर मुझे दया आती है । किन्तु तुम्हारा भविष्य देख कर मुझे सन्तोष होता है-सुख मिलता है ।

मेरा बच्चा मर गया । उसे दूध नहीं मिला । मेरी स्त्री के स्तनो में जितना दूध था-वह सब वह पिला चुकी । जब निबट गया, तब लाचार हो गई । बाज़ार से मिला नहीं । पैसा न था बिना पैसे बाज़ार में कुछ नहीं मिलता । पहले, जब संसार में बाज़ार नहीं थे--घर थे, तब सबको सब कुछ मिलता था । चीज़ के होते कोई तरसता न था । अब खुल गये बाज़ार और बाज़ार

में उन्हीं को मिलता है जिनका बाजार है। और बाजार है पैसे का! पैसे से ही बाजार है। बच्चा कई दिन सूखे मुँह सूखे स्तन चूँसकर सिसकता रहा। अन्त में ठण्डा पड़ गया। मेरे प्यारे मित्र, तुमसे तो कुछ छिपा नहीं है, वही मेरा एक बच्चा था। अब मैं किसे देखूँ! अच्छा दिखाओ तो तुम्हारा बच्चा कितना मोटा हो गया है। हरे राम! साँप के बच्चे को तो देखो कैसा फूला है। तुमने इसे इतना क्यों चराया है? इतना खून यह क्या करेगा? इसे कितने दिन इस योनि में रखने का इरादा है? यह अपनी कांचली कब बदलेगा?

मेरी कुशल पूछते हो? ठीक है, बाजबी हैं, बहुत दिन से मिली नहीं थी। अच्छा सुनो। भयानक युद्ध में फँसा हुआ हूँ। इसी युद्ध में मेरे स्त्री बच्चे ढह चुके हैं-एक भूखा रह कर और दूसरा रोगी रहकर। मैं भी रोगी हो गया हूँ। अब खाया नहीं जाता। चिन्ता से जठराग्नि को बुझा दिया है। सिर झनझनाता रहता है। नींद मर गई है। उसकी लाश को तुम्हारे बच्चे चुरा ले गये हैं। पर खैर मुझे सोने की फुर्सत भी नहीं है। होस भी नहीं है। युद्ध कर रहा हूँ—कंगाली से युद्ध कर रहा हूँ, दरिद्रता भीषण दाँत कटकटा कर असंख्य शस्त्र लिये झपट रही है। हाँ हाँ, अब तक परास्त किया है। यह युद्ध का मध्यभाग आ गया है। ठहरो, दो हाथ में साफ है। अभी जीत कर आता हूँ।

सब्र करो—सब्र। सब्र। तब तक तुम अपने बच्चे को मलाई खिलाओ। अजीर्ण बढ़ाओ। बढ़ाओ। और मेरा युद्ध-कौशल वीरता, यदि देखनी हो, तो आओ मैदान में—देखो, लड़ने क नहीं, देखने को। साँपों का लड़ने का काम नहीं है। वे तो अँधेरे में—जहां पैर पड़ा-बस वहीं काट लेने के मतलब के हैं। अच्छा जाने दो। मैं फ़तह करके आता हूँ। देखो, जिस धन को, जिस सोने के ढेर को तुम छाती में छिपाये उसकी आराधना कर रहे हो, उसे माँ, बाप, भैया, लुगाई, चाची, ताई, नानी, नाना समझ रहे हो, उसी पर—हाँ उसी पर—चाहे वह तुम्हारा कुछ ही क्यों न हो—बिना किसी तरह का लिहाज़ किये उसी ढेर की छाती पर पैर धरके ताण्डव नृत्य करूँगा। अपनी स्त्री की हड्डियों की ठठरियों की मैंने 'भोगली' बनाई है और अपने बच्चे की कच्ची खाल से उसे मँढ़ लिया है। यह है मेरा डमरू। वह बजेगा ढम ढमाढम। दिग्दिगन्त गूँज उठेंगे। फिर मेरा थिरक थिरक कर ताण्डव नृत्य होगा। हा! हा! हा! ताण्डव नृत्य होगा। फ़िर, नाच कर, उसी ढेर को ठुकरा कर, जूतों में कुचल कर फेंक दूंगा। उस पर थूक दूंगा। ऊस पर पेशाब कर दूंगा। तब जी चाहे तो ले जाना। लूट कर ले जाना, आँख बचाकर ले जाना। धन है, वह लात मारने से, थूकने से, मूतने से अपवित्र-अपमानित वो हो नहीं

जायगा! उसकी रबड़ी. मिठाई, फल लाकर बच्चे को खिलाना। मोटा हो जायगा, रंगत चढ़ जायगी। और तुम्हारी स्त्री? हा! हा! हा! उस धन से ख़रीदा हुआ घाघरा उसके लिये परम कल्याण–कारक होगा। वही हज़ार रुपया उसमें से दान धर्म में लगा देना। बस, स्वर्ग में तुम्हारे बाप तुम्हारे लिये द्वार खोले खड़े रहेंगे।

मगर ठहरो। खुशी से उछल न पड़ना। यह लूट का माल देर से मिलेगा। अभी युद्ध भी विजय नहीं हुआ है। सम्भव है, इसी युद्ध में मेरी जवानी मारी जाय। उसी के सिर तो इस युद्ध का सेहरा है! वही तो इस युद्ध की सेनापति है! उसके चारों ओर गोलियां बरस रही हैं। यदि वह मारी गई और तब विजय हुई तो उसके अनन्तर ताण्डव नृत्य करने में भी कुछ समय लगेगा। ओढ़ने को रक्तभरी ताजी खाल चाहियेगी। और वह भी हाथी की! पर मैं वह किसी काले रंग के भारी सेठ की निकालूंगा, रुपया देकर मोल ले लूँगा। मेरा सफेद केश, दन्तहीन मुख, उस पर सज जायगा। एक बार नाच कर उसे मैं ठोकर मारदूंगा। फिर जिसके भाग्य में हो, वह उसे ले जाय।

मेरी यह विजय-वीरता की कहानी जो सुनेगा उसे साँप का

जहर नहीं चढ़ेगा। मेरी शपथ देने से सांप का विष उतर जायगा। जो सांप मनुष्य का स्वाँग धरे छल से धन पर बैठे हैं और जो धन निकम्मा पड़ा जंग खा रहा है और उनके डर से जो लोग, बालक, स्त्रियाँ शरीर और लज्जा की रक्षा तक करने को तरसती हैं, पर उसमें से नहीं ले सकतीं, मेरे नाम की दुहाइ लेते ही, वे सब काले साँप बन जावेंगे और क्षण भर में भाग जावेंगे। उस धन से भूखे अन्न लेंगे, बच्चे दूध लेंगे, रोगी औषध लेंगे, प्यासे जल लेंगे और दुखी सुख लेंगे। इतने पर जो शेष बचेगा वह मेरी दिवंगत आत्मा का होगा। विद्वान लोग मेरी आत्मा की शान्ति के लिये प्रतिवर्ष भाद्रपद वदी चौथ को उस धन पर एक, दो, तीन, चार, दस, बीस, पचास, सौ, हजार, लाख, करोड़, अरब, खरब असंख्य जूते लगावेंगे! अहाहा! कब होगा मेरा वह ताण्डव नृत्य! वह युद्ध का यौवन फूटा पड़ता है। हूं--हूं--वह मारा!! हूं! हूं!

# निराशा

हाथ पैर मारना और खून सुखाना व्यर्थ है। न इससे कुछ हुआ, न होगा जब मैं ऐसे चेहरों का ध्यान करता हूँ जिन्हें धन में धन, रूप में रूप, प्यार में प्यार, सुख में सुख, विद्या में विद्या और मान में मान मिला हुआ है तब मुझे फ़ुर्सत भी नहीं मिलती। और जब मैं उन मुखों का ध्यान करता हूँ जो कहीं कुछ न पाकर झुक गये हैं तो तबियत ऊब जाती है। किसे देखूँ ? अपने देखने से फ़ुर्सत मिले तब न ?

दुनिया ऐसी ही जगह है। यहाँ समतल स्थान बहुत कम है—

प्राय: हैं ही नहीं। विशेष कर मुझे तो खोजे मिले नहीं हैं—कहीं होंगे। मैं जहाँ खड़ा हूँ, वह एक बड़ी ही विकट पहाड़ी है। मेरे पैर जहाँ टिक रहे हैं, वह बहुत ही सकड़ी पगडण्डी है। उसके एक तरफ अतल पाताल है और दूसरी तरफ ढालू गगन-भेदी चट्टान है। दोनों ही—चट्टान भी और पाताल भी—मेरे ही जैसे जीवों से भर रही हैं! मुझमें और उनमें अन्तर इतना ही है कि नीचे वाले नीचे हैं और ऊपर वाले ऊँचे हैं। पर नीचे वाले ऊपर न आना चाहें और ऊपर वाले नीचे न आना चाहें तो यह अन्तर कुछ भी नहीं रहता। यह समझना कठिन है कि सुखी कौन है। पर मेरी इच्छा ऊपर ही जाने की थी, इससे मैं समझता हूँ ऊपर जाने में सुख है। ऊपर जा पहुँचने में क्या है? सुख है भी या नहीं, इसकी बाबत कुछ भी नहीं कह सकता। पर शायद सुख नहीं है। इसके प्रमाण में मैं यदि कहता हूँ कि मैं भी कुछ से ऊँचा हूँ, पर मुझे सुख कहाँ है? जो मुझ तक आना चाहते हैं, वे मुझ तक पहुँचने में भले ही सुख समझें, पर मुझे सुखी समझना उनकी भूल है। फिर भी वहाँ पहुँचने में भी सुख समझा था, यही बड़ी बात थी। सुख की राह तो मिल गई थी। यही क्या कुछ कम था। पर अब तो यहीं, इसी अध-बीच में, इसी तंग पगडंडी में डेरा डालना पड़ा। अब बाकी समय का कोई समय-विभाग नहीं है। काम

सब ख़त्म हो गया है—नहीं नहीं उससे मैंने इस्तीफ़ा दे दिया है। यह देखो, ऊपर वाले और ऊपर जा रहे हैं और नीचे वाले ऊपर आ रहे हैं। कहाँ ? काम तो कहीं भी ख़त्म नहीं हुआ है ? तब सबसे उपराम होकर, सबको काम करता देखकर कैसे नींद आवेगी ? विश्रान्ति कहाँ मिलेगी ? दिन कैसे कटेंगे ? मरने के तो अभी बहुत दिन हैं।

हाँ, पर अब गोड़े नहीं उठते। कमर टूट गई है, दिल बैठ गया है, रक्त ठण्डा पड़ गया है। इतना करके कुछ न पाया, आगे क्या पावेंगे ? कुछ नहीं। सब मृगतृष्णा है—मृगतृष्णा। इस ऊँचाई का कुछ अन्त तो है नहीं, ठेठ तक वही पगडण्डी गई है। यही तंग पगडंडी, जब तक चोटी पर न पहुँचे और दस हाथ चढ़ने पर भी यही पगडंडी, यही एक तरफ ऊँचा पहाड़, यही एक तरफ अतल पाताल—सब वही है। और चोटी ? चोटी का नाम न लो, वहाँ नहीं पहुँचा जायगा। हर्गिज़ नहीं पहुँचा जायगा। आ मन! सन्तोष से यहीं बैठ।

# आशा

आशा ! आशा ! अरी भलीमानस ! ज़रा ठहर तो सही, सुन तो सही, कहाँ खींचे लिये जा रही है ? इतनी तेज़ी से, इतने ज़ोर से ? आखिर सुनूँ तो कि पड़ाव कितनी दूर है ? मञ्जिल कहाँ है ? ओर छोर किधर है ? कहीं कुछ भी तो नहीं दीखता ! क्या अन्धेर है ! छोड़, मुझे छोड़ । इस उच्चाकांक्षा से मैं बाज़ आया । पाड़ रहने दे, मरने दे; अब और दौड़ा नहीं जाता । ना–ना-अब दम नहीं रहा । यह देखो यह हड्डी टूट गई, पैर चूर चूर हो गये, साँस रुक गया, दम फूल गया ।

क्या मार ही डालेगी सत्यानाशिनी ? किस सब्ज बाग़ का झाँसा दिया था ? किस मृगतृष्णा में डाला मायाविनी ? छोड़ छोड़, मैं तो यहीं मरा जाता हूँ -यहीं समाप्त हो रहा हूँ मैंने छोड़ा, दावा देता हूँ—मेरी जान छोड़। मैं यहीं पड़ा रहूँगा। भूख और प्यास सब मंजूर है—हाय! वह कैसी कुघड़ी थी जब मैं प्यारी शान्ति का हाथ छोड़, उससे पल्ला छुड़ा, उसे धक्का मार, अन्धे की तरह—नहीं नहीं पागल की तरह—तेरे पीछे भागा था ? कैसी भङ्ग खाली थी, कैसी सुमत गँवाई थी ? कहाँ है मेरी शान्ति ? कुछ भी पता नहीं है—जीती भी है या मर गई !

क्या करता। तेरी मोह भरी चितवन, उन्मादक मुस्कुराहट, और दिल को लोट-पोट करने वाली चपलता ने मुझे मार डाला मुझ पर, मेरे दिल पर, मरी शान्ति पर, इन सब ने डाका डाला। शान्ति छुटी, सुख छुटा, घर बार छुटा, आराम छुटा, अब भी दौड़ बन्द नहीं ? अब भी मंजिल पूरी नहीं ? तैंने कहा था, वहाँ एक करोड़ स्वर्गों का निचोड़ा हुआ रस सड़कों पर छिड़का जाता है। तैंने कहा था, शान्तियों का वहाँ ढलाई का कारखाना खुला हुआ है। तैंने कहा था, सुख के सात समुद्र भरे पड़े हैं। तैंने कहा था, रूप का वहाँ अतर खींचा रखा है। तेरे इतने प्रलोभनों में यदि मैं भटक गया तो भगवान् मेरा

अपराध क्षमा करें। यहाँ तो मार्ग ही मार्ग है—मञ्जिल का कहीं ठिकाना ही नहीं है। क्या जाने कहीं है भी या नहीं।

प्यास के मारे कण्ठ चिपक गया है। जीभ तालू से सट गई है। घर में कूए का ठण्डा जल था, उसे छोड़ अमृत के लोभ में निकला, तो प्यास पल्ले पड़ी। घर में पेट भर रोटियाँ तो थीं—जैसी भी थीं—मोहन भोग के लोभ में गधे की तरह वे छोड़ दीं, अब भूख के मारे आँखें निकल रही हैं। चटाई का बिछौना क्या बुरा था ? सिंहासन कहाँ है ? यहाँ चलते चलते पैर टूट गये हैं। वह बीहड़ मैदान, रेगिस्तान, नदी-नद, तालाब झील, जङ्गल, बन, नगर, पहाड़, गुफा, खोह, ऊबड़ खाबड़—ओफ़ बराबर तय किये आ रहा हूँ। अभी और भी तेरी उँगली उठ रही है। तेरी तेज़ी बराबर जारी है। तू नहीं थकी ? पसीना भी आया ? होश हवास बराबर क़ायम हैं ? भीषण सुन्दरी तू कौन है ? वही आगे को उँगली उठा रही है। 'थोड़ी दूर और है' यही तेरा मन्त्र है। बढ़ी चली जा रही है आँधी और तूफान की तरह। छोड़ दे, मेरी उँगली को छोड़ दे, नहीं तो मैं उँगली काट डालूँगा। थोड़ी दूर हो या बहुत दूर हो, बस मुझसे नहीं चला जाता। घुटने छिल गये, बाल पक गये। पेट कमर में लग गया। कमर धरती पर झुक गई ! अब भी दया

नहीं—अब भी आराम नहीं। रहने दे, मैं यहीं आराम करूँगा-यहीं गिरूँगा, यहीं मरूँगा—जा—छोड़, छोड़।

लौट ही जाता। शायद शान्ति मिल जाती। पर! पर! पर! लौटने का ठिकाना किधर है? और आ किधर से रहा हूं-कुछ भी तो नहीं मालूम। दौड़ा दौड़ा आ रहा हूँ—इधर देखा न उधर। आज से आ रहा हूँ? जन्म समाप्त हो चला। सारा समय मार्ग में ही बीत गया—फिर भी कहती है—'थोड़ा और'। लौटने दे। पर लौटने का समय कहाँ है? घर बहुत दूर है। उसकी राह जवानी से बुढ़ापे तक की है। अब बूढ़ा तो हो गया-जवानी अब कहाँ से आवेगी? अब लौटना व्यर्थ है। असम्भव है? तब? तब क्या यहीं मारना होगा? यहीं? मार्ग में? काँटे और पत्थरों से भरी धरती में? हिंसक जन्तुओं से भरे जंगल में? हे भगवान्, जवानी से बुढ़ापे तक, दौड़ने—मरने-सब कुछ त्यागने का, यही-यही-यही फल मिला? हाय!

फिर वही, "थोड़ी दूर और"। यह थोड़ी दूर कितनी है? सच तो बता, ईश्वर की क़सम। अब तो वापस लौटने का समय ही नहीं है। प्रकाश का एक कण भी तो नहीं दीखता। तेरी आँखें मात्र चमकतीं हैं। इन आँखों के प्रकाश में और कब तक चलूँ? ना-ना-अब दम नहीं है। मैं हाथ जोड़ूँ, हा हा

खाऊँ, मुझे छोड़ दे। मरने को छोड़ दे। मुझे न सुख की हौंस है न जीने की।

क्या कहा ? मंजिल आ गई ? कहाँ ? किधर ? देखूँ ? इतना क्यों हँसती है। मुझे हँसना अच्छा नहीं लगता। ठहर। क्या सचमुच मंजिल आ गई ? यह जो सामने चमक रहा है—वही क्या हमारा गन्तव्य स्थान है ? पर वह तो अभी दूर है। वहाँ तक पहुँचने की ताब कहाँ है ? और पहुँच कर वह भोग भोगने की शक्ति भी कहाँ रह गई है ? रहने दे। अब एक पग भी न चलूँगा। चला भी न जायगा। इसका कोई उपयोग नहीं। पहुंचना ही कठिन है और पहुँच कर उसका उपयोग करना तो और भी कठिन—असम्भव है। भोग का समय, आयु, शक्ति, सब इस मार्ग में समाप्त हो गई। अब क्या उस भोग को लालच की दृष्टि से तरसते मन से देखने को वहाँ जाऊँ ? यह तो और भी कटु होगा। रहने दे, अब वहाँ जाने का कुछ आकर्षण नहीं रहा। तुम अक्षययौवना हो, किसी अक्षययौवना को पकड़ो। और मैं तो यहीं इसी मार्ग में मरा ! हे भगवान् ! आज शान्ति मिलती ! आशा ! आशा तुम जाओ-जाओ ! हाय ! मैं मरा ! एँ ! एँ ! क्या कहा ? वहाँ सब थकान व्याधि मिट जायगी ? शान्ति भी मिल जायगी ? नहीं ? ऐसा ! अच्छा भाग्यवती ! चल। अच्छा चल। पर कितनी दूर है ? है तो सामने ही न ? अच्छा-और चार पग सही—चल-चल।

# घृणा

हटाओ ! हटाओ । उसे मेरे सामने से हटाओ । ना । मैं उसे दण्ड नहीं दूंगा । भगवान् उसे देखेंगे । उसके योग्य कोई दण्ड नहीं है । यह काम मनुष्य की शक्ति से बाहर है । यह मेरा अन्त समय है । जहाँ जाता हूँ वहाँ शायद भगवान् मिलें । उसका नाम मत लो । मुझे जरा सुख से मरने दो । उसकी बात मत करो । नीच, स्वार्थी, झूठा, विश्वासघाती, कमीना । उफ, मुझे भुलादो, किसी तरह उसका नाम भुला दो । आग के अँगारे की तरह यह छाती पर धरा है । घृणित कुत्ता, खून पीने

वाला पिस्सू, डरपोक खटमल। हट मर—मैंने तुझे छोड़ा, भगवान् के नाम पर छोड़ा। लेकर रह, उसे लेकर रह, पापिष्ठ ! हाय ! उसी की याद आती है। उस याद में सड़ी बास आती है, दिमाग़ फटा जाता है। संडास की मूर्ति, पाप की प्रतिमा, विश्वास-घात की स्याही, विष्ठा के कीड़े ये सब तेरे रूप हैं। धूर्त ! बुज़दिल ! निकम्मे ! !

मेरी सरला बधू गांव की गँवारी थी। सीधी साधी। आज वह कहाँ है ? वह घास का सफेद फूल मसल कर किस मोरी में डाल दिया है ? कितनी चाह से मैं उसे लाया था। समझा था, वह मेरी है। उसने भी कहा था-मेरी है। तू कौन था ? उच्छिष्ट भोजी कौवे ? काने ! काले ! तू कहां से देखता था ? देखते देखते ही ले भागा, तुझे मार डालूं, यह सम्भव है, पर तेरे खून के हाथ कहां धोऊँगा ? यह घृणिक खून ? कोढ़ के कीड़ों से गिजमिजाता खून ? ना, मैं तुझे नहीं मारूँगा, तुझे नहीं छुऊँगा। चल हट सामने से। आंखों में क्यों गढ़ा है ? अरे ! निकल ! नीच ! अपदार्थ ! मर, मुझे छोड़। हवा का रुख छोड़ दे। तुझे छूकर जो हवा आ रही है उसमें सांस लेने से मेरा दम घुटता है।

तेरा दिल पुरानी हड्डी से भी अधिक सूखा है और खून मुर्दे से भी अधिक ठण्डा है। इस तरह मरे बैल की तरह क्यों

आंखें निकालता है ? क्या मुझे खायगा ? मेरा खून पायेगा वह तो तेरे सर्वनाश की चिन्ता में सूख गया ! उसमें क्य स्वाद है ?

ज़ा पापी ! अब मैं मरा जाता हूं, मरे को खा जाना। हलव से उगलन निकाल कर खाने वाले श्वान ! मुर्दार भोजी गीदड़ ज़रा ठहर जा।

जा, सुख के श्मशान पर मौज कर, प्रेम की लाश का रस पी। तृप्त हो जायगा। इस लोक और परलोक का सब कुछ तुझे मिल जायगा। चल भाग यहाँ से। दूर हो—दूर—दूर–दूर। हटाओ, हटाओ, दूर ले जाओ। दुनियाँ की आंखों से दूर ले जाओ। धरती आस्मान से दूर ले जाओ। जो इसे देखेगा, अन्धा हो जायगा। जो इसे छुएगा, कोढ़ी हो जायगा। जो इसके पास से होकर निकलेगा, सड़ जायगा। जिसे इसकी हवा लगेगी, कीड़ा बन जायगा। इसे गाड़ दो, धरती में गाड़ दो, या मिट्टी का तेल डालकर दीवा सलाई दिखा दो। नहीं तो नदी में फेंक दो। देखना, चीमटे से पकड़ना। दाँत तोड़ देना, आँख फोड़ देना, पैर काट डालना, सावधान रहना। ओफ ! आँख ओझल हुआ। झगड़ा कटा। मगर भीतर है। अभी है ? वही है। हे भगवान् ! हे नाथ ! इसे भुला दो, मुझे बुला लो। यहाँ यह नहीं छोड़ेगा। हाय ! देखो किस तरह घूरता है ! मैं मरा हाय ! हाय ! छूना मत—छूना मत ! ओफ ! ! !

# भय

हैं। यह खड़का कैसा! कौन? इसे भी खोदकर यहीं गाड़ दूँगा। ओह? कुछ नहीं। मैं यों ही डर गया—हवा से पत्ता खड़क गया था। अब यह क्या? कोई है? नहीं, कोई नहीं। यहाँ कौन आयगा? इस बीहड़ वन में? इस भयंकर जंगल में? इस सन्नाटे की रात में। इस चिल्ले की सर्दी में···। लोहू जम गया है, होठ सीं गये हैं, जीभ तालू से सट गई है। कैसा अँधेर है। बापरे! यह क्या चमकता है? हो! किसने छुआ? यह ठण्डा हाथ किसका है? भागूँ? किधर? पगडंडी किधर है? अब वह कौन बोला?

ओह ! कोई पक्षी है। मैं भी कैसा मूर्ख हूँ—अपने ही पद शब्द से चौंकता हूँ, अपनी ही छाया से डरता हूँ, अपने ही स्पर्श से काँपता हूँ। काम जल्दी खतम करना चाहिये। अच्छा अब खोदूँ। कुदाल कितना भारी है। जमीन लोहे सी हो रही है। जरा सी चोट में कितना शब्द होता है। कहीं यह चिल्ला न उठे। जब मर ही गया है तब क्या चिल्लायगा ? उस वक्त ही नहीं चिल्लाने दिया—एक शब्द तो निकलने दिया ही नहीं। कैसा छटपटाया था, कितने हाथ पैर मारे थे, कितना जोर लगाया था, पर अन्त में ठण्डा हो गया। आँखें बाहर निकल पड़ी थीं, जीभ हलक से लटक गई थी, गले की नसें फूल गई थीं, दो मिनट में दम उलट दिया। ना—ना। वह बात याद न करूँगा। कोई, सुन न ले। गला क्यों कस गया ? दम घुटता है। ठहरो, कुर्ते को फाड़ डालूँ। हाथ क्या गीले हैं ? एं ? खून ! खून ! चुप ! चिल्लाता क्यों हूँ ? अन्धेरे में कौन देखता है ! धो लेने पर साफ़ ! अरे ! क्या वह उठता है ? तू कौन ? भूत कि पिशाच ? तुझे भी मार डालूँगा। अब यह पल्ला किसने खींचा ? पीछे कोई है क्या ? पीछे फिर कर देखूँ ? कोई मार न दे ! मुझे क्या कोई पकड़ लेगा ? सबूत ? सबूत क्या है ! फाँसी ? मुझे ? किस सबूत से ? गवाह कौन है ? यही बोलेगा क्या ? मुर्दा ! यह ? ठहरो इसे दुबारा मारे देता

हूँ। यह क्या! पसीना आ रहा है! भागूँ ? पैरों में पारा चढ़ गया ? भागूँ ? और यह ? यों ही रहेगा ? पड़ा रहे ? कौन देखता है ? कौन जानता है ? कौन कहता है ? सबूत क्या है ? यह कौन हँसा ? इतनी ज़ोर से ? कौन ? कोई नहीं। भागूं। अच्छा भागता हूँ। पड़ा रहने दो, सबूत क्या है। इसी के कपड़ों से हाथ पोंछ दूँ। पानी है क्या। वह नहीं है! अच्छा भागता हूँ! एं पी-पी-पो-छे कौन—कौन है! यह गिरा! बचाओ—बचाओ! दौड़ो—दौड़ो! फाँसी—न-न-नहीं-मैं नहीं। सबूत! नहीं मैं नहीं—बापरे! फाँसी! फ-फ-फ-फाँसी! मरा! मरा-मरा—हाय!!!

# गर्व

वह ? उसकी यह मजाल ! अच्छी बात है देख लूँगा ! मेंडकी को ज़ुक़ाम हुआ ? मेरी बराबरी करेगी ? बराबरी कहाँ ? आगे बढ़ेगा ? वह भुनगा ? कल तक जो मेरे द्वार पर जूतियाँ चटखाता फिरता था ! जिसकी माके हाथों में चकी पीसते पीसते आँटे पड़ गये हैं, आज वह यों चलेगा ? अकड़ कर, इस ठाठ से ? कुचल डालूँगा। दूध से मक्खी की तरह निकाल फैंकूँगा। वह अपने हिमातियों को लेकर आवे, एक एक से सुलझ लूँगा।

मुझे नहीं जानता। ऐसे ऐसे अंटियों में अटके फिरते हैं।

बड़े बड़े 'तीस मारखाँ' देखे हैं। सब साले दून की हाँकते थे, पर अन्त में सबका सिर नीचा हुआ। यही मैं सबसे ऊंचा हुआ। इन्हीं हाथों से यह सम्मान, यह धाक, यह जलाल पैदा किया। किसी को क्या समझता हूँ! लखपती होंगे तो अपने घर के। दिखा दूँगा। यहीं नाक न रगड़े तो नाम नहीं, 'भङ्गी का पिशाब' कह देना!

लड़ लो, चाहे जिस तरह लड़ लो। धन में, बल में, विद्या में, खर्च में। चार कौड़ी क्या हुईं, सालों के सींग निकल आये। धरती पर पैर नहीं टेकते। कुछ परवा नहीं। ईंट से ईंट बजा दूँगा। या मैं नहीं या वह नहीं। मैं हूँ मैं! किसकी मजाल है! किसकी माने धोंसा खाया है, किसकी छाती पर बाल हैं? पिशाब में मूँछ मुड़वा लूँगा। डाढ़ी का बाल उखड़वा लूँगा। वह मैं हूँ! मेरा नाम क्या साले जानते नहीं हैं! किसने मुझे अब तक नीचा दिखाया! जो उठा वहीं खटमल की तरह मसल दिया! दम क्या है! किस बूते पर उछलते हैं। साले पतंगे है—पतंगे। बेमौत मरते हैं। किसी ने सच कहा है—"चिउँटी के जब पर भये, मौत गई नियराय।" यहाँ तो मेरी चलेगी। मेरी ही मूँछें ऊँची उठेंगी। यह सारी सम्पदा मैंने अपने भुजबल से पैदा की है। कितनों को रिज्क देता हूँ। कितने मेरा टुकड़ा खाते हैं। कितने मेरे हाथ से पलते हैं। किसी

को तौफ़ीक है ? ऐसा कोई है ? बादशाहों की पूंछ में क्या सुर्ख़ाब के पर लगे रहते हैं ? मैं किस बात में कम हूँ ? जहाँ जाता हूँ लोग झुक कर सलाम करते हैं और जाने की ज़रूरत भी नहीं पड़ती, लोग यहीं सलाम करने आते हैं। मेला लगा रहता है। मैं किस साले के दरवाजे जाऊँगा ? इन्हीं को रोटियाँ लगीं हैं, सो ज़हर के सारे दाँत तोड़े देता हूँ। देखो मेरे हतकंडे।

लोग कहते हैं भगवान् से डर। बेवकूफ इसी डर ही डर में भुक्खड़ बने बैठे हैं ! छोटे बड़े सब तरह के काम किये, आज तक तो भगवान् ने हाथ पकड़ा नहीं ! तेरी भक्ति की दुम में रस्सा। वे आते हैं पण्डित जी, पूरे बेगैरत, बिना पूछे सौ सौ असीसें देते हैं। चेहरा ऐसा जैसे अभी रो पड़ेंगे। शरीर ऐसा जैसे कब्र से उठ कर आये हैं। कौड़ी को दाँत से उठाते हैं। ये हैं भगवान् के भगत ! उल्लू के पट्ठे, हरामी, खाते हैं मेरा, कहते हैं भगवान् का। अच्छा सब मौकूफ़। इन निकम्मों को आज से कौड़ी न दी जाय। भगवान् से माँगें ! उनका भगवान् देखें कैसे खिलाता है। कहीं भगवान् न भगवान् की दुम। पद्दू का पद्मसिंह बना रखा है ! हम हैं भगवान् ! यह

रुपया है हमारा सुदर्शनचक्र। यह दस्तावेज है हमारी गदा। और यह हमारी कृपा है पद्म और आशा शङ्ख। हमें भजो, हमें झुको, हम देंगे—हम देंगे—हम—हम—हम। इधर देखो हम! हम!! हम!!!

# अशान्ति

नस नस में रोगों ने घर कर लिया है। दवाइयों के ज़हर से कलेजा जला पड़ा है। सिर में विचारों की रुई धुनी जा रही है। कहाँ जाऊँ ? क्या करूँ ? पलँग पर पड़े पड़े हड्डियाँ दुखने लगीं। गद्दे काटते हैं। रातभर नींद नहीं आती। इतने खटमल कहाँ से आ गये ! प्राण निकलें तो पिण्ड छुटे। पर प्राण अभी निकलेंगे नहीं। कितनी साँसत भुगतनी है ? हे भगवान्, आगे क्या होगा ? पीछे क्या होगा ? कुछ भी तो नहीं सूझता ! जब से होश सँभाला, जी तोड़ कर कमाया। सारी जवानी परिश्रम के पसीने में लतपत पड़ी है। रात देखा न दिन। मान

देखा न अपमान। सुख देखा न दुःख—धर्म देखा न अधर्म। जो सामने आया, सब किया। धन मिला भी। उसे भोगा भी, पर भोगा नहीं गया। जीवन के रस में बुढ़ापे की किरकिरी मिल गई। इस पुराने चिराग का सब तेल चीकट बन गया। भोगने की हौंस भोगों को ढोते ढोते ही मर गई। रसोई बनाते बनाते ही भूख मर गई।

चौथे ब्याह की जवान स्त्री है। उसे जब ब्याहा था ब्याह के पहले देखा था। हर्ष के मारे लोहू नाच उठा था। देखते देखते पेट ही नहीं भरता था। पर आज उससे डरता हूँ। उसकी वह कटोरी सी आंखें भूखे की तरह मेरी ओर घूरा करती हैं। जब तक वह घूरती हैं भूल कर भी नहीं हँसती। होठ फड़कते हैं पर मुस्कराते नहीं। मैंने उसका क्या बिगाड़ा है? मुझ पर इतनी विष-वर्षा क्यों? धन, घर, ऐश्वर्य सब कुछ मैंने उसे दिया। यह कहां मिलता? गरीब गांव की लड़की थी। ये महल, ये ठाठ, ये दासी-दास कहीं देखे थे? पर ये सब मानों तुच्छ हैं? और क्या चाहती है? भँगल को देखते ही हँसती है, घुल घुल कर उसी से बोलती है—जैसे वह उसका सगा हो! घबराता हूँ। इज्जत, आबरू, बड़प्पन सब कच्चे धागे में बँधे लटक रहे हैं, और वह कच्चा धागा उसी के

हाथ में है। एक ठोकर में सब खत्म हो जायगा—सिर्फ एक ठोकर में। जब तक हूं दोनों हाथों से पगड़ी पकड़े बैठा हूं। ज़माना नाज़ुक है। पर मेरे पीछे क्या होगा? हे भगवान! यह सब किस मायाजाल में फांसा? पर किसी का क्या अपराध है! सब फन्दे तो अपने ही हाथ से बनाये थे!

जिस सन्तान की लालसा पर चार चार बालिकाओं का कौमार्य भ्रष्ट किया, वह आज तक नहीं मिली। जिनके पास रहने को जगह नहीं, खाने को अन्न नहीं, उनके घर में दर्जनों बालक होते हैं। मैंने सब कुछ संग्रह किया, सब कुछ है, पर इन्हें सुख से भोगने वाला कोई नहीं है। वर्षों तक रात रात भर जाग कर, झूठ सच बोल कर, न जाने कितनों का अधिकार छीन कर, कितनों को नीचे गिराकर, यह तिमंजला 'मरा हाथी' खड़ा किया है, जिसमें मेरे पीछे दिया जलाने वाला भी कोई नहीं है। हाय करम! लोग रोते हैं कि धन नहीं, धन कैसे मिले? मैं रोता हूँ, इस धन को, इस जवान सुन्दरी स्त्री को, कहाँ रखूँ? किसके सिर मारूँ? कहां नष्ट करूँ? कोई ठौर नहीं! हाय राम! जैसे बनता है मन को मारता हूँ, क्रोध को दबाता हूँ, सज्जनता का व्यवहार रखता हूं; पर फिर भी सब व्यर्थ होता है। कोई सुजनता से नहीं पेश आता। नौकर लोग आंख देखते चोरी करते हैं और फटकारने पर मुँह भींच कर

हँस देते हैं। सब बे अदब हैं। मुनीम गुमास्ते पीठ पीछे खिल्ली उड़ाते हैं। कोई नहीं सुनता—इस कान सुन कर उस कान उड़ाते हैं। सबको जानता हूं, किसी के हृदय में आदर नहीं, भक्ति नहीं, ममता नहीं। सभी मतलब गांठ रहे हैं। मैं बूढ़ा क्या ख़ाक हुआ ? धनी मालिक बनकर क्या ऐसी तैसी की ? सुख नहीं था, शान्ति नहीं थी, इज्ज़त तो मिलती; बाहर न सही, अपने ही घर में सही।

कर्ज़दार दिवालिये हो गये ? बिना अदालत गये चलेगा नहीं। किसकी फ़िक्र करूँ ? दो विधवा बहनें छाती पर थीं, अब भतीजी भी आ गई। आठ को साठ करते कितने दिन लगेंगे ? बापपने का सुख तो नहीं, दुःख मिला। घर में बरात चढ़ी चली आ रही है। लोग सैकड़ों रिश्ते निकाल लाते हैं। चचा, ताऊ, साला, साले का साला, धेवती के नवासे का जमाई-सब हाज़िर हैं। जाने का नाम नहीं लेते। सब खा रहे हैं, बिगो रहे हैं। घर लुट रहा है। कुछ प्रबन्ध नहीं। कुछ इन्तज़ाम नहीं। क्या करूँ ? रात करवटें लेते बीतती हैं और दिन चिन्ता करते। खाने बैठता हूं तो भोजन मुझी को खाये जाता है। घर में सब कुछ है, पर मेरे लिये मिट्टी है। किसी में मज़ा नहीं। क्या होगा ? कैसे दिन कटेंगे ? क्या संखिया खाऊँ ?

कैसे पार पड़ेगी ? हे भगवान् ! हे नाथ ! हे दयाधाम ! तुम्ही
खिवैया हो ! तुम्हीं पार लगाने वाले हो ! तुम्हारे ही आसरे
सब कुछ है। हे भगवान् ! हाय राम ! हरे ! हरे !

# कर्मयोग

क्या आंख फोड़ देने से देखने की हौंस मिट जायगी ? बांध कर नदी से दूर डाल देने से क्या पीने की इच्छा ही नहीं रहेगी ? वासना की वस्तु को त्याग कर वनवासी होने से क्या वासना से पिण्ड छूट जायगा ? बेवकूफ़ हूँ। विरक्ति किस से ? क्या संसार से ? अच्छा, संसार छोड़ कर कहां जाऊँ ? घर छोड़ कर बन में जा सकता हूं, पर इसी से क्या संसार छूट गया ? घर ही संसार है क्या ? कैसी वे समझी है। "दिल रंगा नहीं उस रंग में, क्या है कपड़े रंगने में।" सच बात है। क्रोध, काम, लोभ, मोह मन में बसे हैं। इन्द्रियों को उनका

चसका लग रहा है। तब बन जाने से इतना होगा कि यहां मनुष्मों से द्वेष और लड़ाई है-वहां शेर चीतों से होगी। यहाँ मनुष्यों से प्रेम है, वहां पशु-पक्षियों से होगा। वाह रे भ्रम! क्या मैं सिंह को देख कर डर से चिल्ला न उठूँगा? सांप को देखकर क्या मैं उसे अपने बच्चों की तरह छाती से लगा सकता हूं? भेड़िये को पास बैठा कर क्या अपने साथ आदर से भोजन करा सकता हूं? नहीं। तो सिर्फ कपड़े रंगकर बनवासी होने से क्या होगा? मैं यदि अपनी स्त्री, पुत्र, परिजन और बान्धवों से प्रेम नहीं कर सका, तो अखिल विश्व पर—समस्त विश्व के स्वामी पर—कैसे प्रेम कर सकूंगा? सब विडम्बना है। छल है, आत्म-प्रतारणा है। सुन्दर प्रशस्त कर्मक्षेत्र घर है। कायर घर से डर कर बन को भागते हैं। घर तीव्र शस्त्र है। बुद्धिमान् और वीर उसे लेकर संसार को विजय करते हैं। मूर्ख कायर उसकी तेज धार से जख्म खा बैठते हैं। जिस प्रकार चतुर वैद्य तीव्र से तीव्र विष को रसायन बना कर रोगी को सेवन कराकर जीवनदान देता है, उसी प्रकार बुद्धिमान् पुरुष काम, क्रोध, लोभ, मोह जैसे भयंकर विषों को रसायन बना कर जीवन को सफल करते हैं। रूप क्या विष है? प्रेम क्या बिच्छू है? धन क्या सर्प है? बांधव क्या सिंह है? अभागे लोग इनका कितने अविचार से त्याग कर देते हैं। भूल है—भूल है—भ्रम है। ज्ञान की प्रथम गुरु माता है। कर्म का प्रथम गुरु पिता है। प्रेम का प्रथम गुरु स्त्री है

और कर्तव्य का प्रथम गुरु सन्तान है। व्यवहार का गुरु परिजन है। धर्म के गुरु पड़ौसी हैं। आचार के गुरु मित्र हैं। इस गुरु मंडली का अपमान करके अभागा पुरुष कहां जाता है? मैं घर में रहूंगा। मैं विरक्त न बनूंगा। मैं कर्म योग की दीक्षा लूंगा। मेरी समझ में सब आ गया—अच्छी तरह आ गया। जैसे कमल का पत्ता पानी में रह कर, पानी में उत्पन्न होकर, पानी से अलग रहता है, मैं भी माया में रह कर माया से अलिप्त रहूँगा। जैसे सूर्य पृथ्वी के रस को आकर्षण करके संसार पर वर्षा करता है, वैसे ही मैं धन, धर्म, धान्य, जन, सबको आकर्षण करूँगा और पुनः विसर्जन करूँगा। न मेरा है, न मेरा होगा, न मेरा किसी पर दावा है। मैं स्वामी नहीं हूं, इतनी भूल थी, आज उसे सुधारे देता हूं। मैं सबका हूं। इनसे अलग हो ही नहीं सकता। मैं बन्दी हूं। मुझे स्वतन्त्र होने का अधिकार नहीं है। मैं स्वतन्त्र नहीं होऊँगा। मैं करूँगा, पर अपने लिये नहीं। लाभ हो या हानि। मुझे हर्ष न विषाद। जिसका बने बिगड़े उसका बने बिगड़े। मैं क्या मालिक हूं। मुझे फल की न चाह न खबर। मैं बन्दी हूं। करूँगा, मागूंगा नहीं। और कुछ मागूंगा नहीं। मैं बन्दी हूं।

# दया

यह मेरी अन्तरात्मा की पवित्र आज्ञा है। यह मेरे हृदय का शृंगार है। इसकी स्मृति से मन में प्राण संजीवन होता है। मैं यह कार्य करूँगा। यह सच है कि वह मेरा कोई नहीं। वह पापी पतित है। उस पर सभी का कोप है। हाय! भगवान् का भी कोप है। कुछ उस पर क्रोध करते हैं, कुछ दुरदुराते हैं, कुछ घृणा करते हैं और कुछ अविश्वास करते हैं इतना सह कर वह कैसे जी सकेगा? इससे तो अच्छा यही है कि उसे लोग मार डालें। जिसे ठिकाना नहीं, आश्रय नहीं, उत्तेजन नहीं, प्रेम नहीं, आदर नहीं, वह इस पृथ्वी पर स्वार्थ की हवा

में कितने दिन सांस ले सकेगा ? चाहे जो कुछ भी हो। लोग चाहे मुझसे रूठ जायँ, पर मैं उसे अवश्य प्यार करूँगा। यह मेरी अन्तरात्मा की पवित्र आज्ञा है। यह मेरे हृदय का शृंगार है। इसकी स्मृति से मन में प्राण संजीवन होता है। मैं यह कार्य करूँगा।

वह नीच है, अछूत है, मलिन है, इससे क्या ? क्या उसके शरीर में वही आत्मा नहीं है जो हमारे शरीर में है ? उसके जैसे हाड़ मांस क्या हमारे शरीर में नहीं हैं ? वह ईश्वर का पुत्र है। उसके शरीर का प्रत्येक कण ईश्वर के हाथ की निजू कारीगरी है। ईश्वर ने उसे स्वयं बनाया है और आज तक पाला है। बिना उसके वातावरण के क्या वह इतना बड़ा होता ? यह बात झूठ है ? अब न सही, पर कभी तो उसने प्यार पाया होगा ? क्या किसी ने कोई ऐसा बच्चा देखा है जिसने मां की छाती से चिपट कर मधुर दूध न पिया हो ? क्या किसी ने ऐसा बच्चा देखा है जिसने बाप के लाड़ न देखे हों ? और इसने क्या बचपन को पार नहीं किया है ? आज उसकी यह दशा हुई। प्यार से गया, सुख से गया, घृणा क्रोध तिरस्कार की बौछार से मरा जा रहा है। क्या प्यार की प्यास इसके मन से बुझ गई होगी ? एक बार जिसने मिश्री खाई है, क्या

वह उसके मिठास को भूल सकता है? वही प्यार मैं इसको दूंगा। जैसे प्यासे को पानी पीने से उसके प्राण शीतल हो जाते हैं, जैसे अन्न पाकर भूखों की आंखों में ज्योति आ जाती है, उसी तरह इसे प्यार पाकर सुख मिलेगा। वह मुझे प्यार करेगा। प्यार क्या योंही मिलता है? कितने मरे, कितने खपे, मैं प्यार को पाऊँगा। गुणों पर प्यार होता है, ठीक है। उसे प्रेम कहते हैं। एक प्यार चाहना का होता है, उसे मोह कहते हैं। यह प्यार बासनाहीन है, इसमें न गुण देखे जाते हैं, न दोष, न नीच न ऊँच, न पाप न पुण्य। केवल दुःख देखा जाता है। चाहे जो हो, चाहे जिस कारण से दुःखी हो, उसे प्यार करना, इस प्यार का एक प्रकार है। इस प्रकार को कहते हैं दया। भगवान् दयालु हैं। दया भगवान् की नियामक सत्ता है। भगवान् के पालन में दया है, संहार में भी दया है। यही दया उसे अतुल्य न्यायी बनाये है। जो न प्यार के, न आदर के, न प्रतिष्ठा के, न काम के पात्र हैं, वे सब दया के पात्र हैं। अच्छी तरह समझ गया हूँ। देखते ही पहचान लूंगा। छुटते ही दया करूँगा। यह देखो, मन में कैसा हर्ष उत्पन्न हुआ, आत्मा में कैसा संतोष मिला। यह दयाधन का प्रताप है। हे प्रभु! मेरे हृदय में दया को स्थाई बना। दया मेरे नेत्रों में बसे। दया मेरे पथ का प्रकाश हो।

# वैराग्य

अपने मज़े की खातिर गुल छोड़ ही दिये जब।
सारी जहाँ के गुल्शन मेरे ही बन गये अब।

सबका फैसला हो गया, सबसे सन्धि हो गई। सब झंझट हट गये। सब को छुट्टी है। इन्द्रियों को छुट्टी और मन को भी छुट्टी है। आत्मा और मैं, बस दोनों ही रहेंगे। एक खेलेगा, एक देखेगा। सलाहकार और नुक़ताचीन सब गये। बड़ी सुन्दर व्यवस्था हुई—बड़ी ही सुन्दर। प्राण कैसा स्वच्छन्द हो रहा है! आहाहाहाहा! आत्मा प्रकाशित हो रही है। भीतर से ज्योति निकलती है। मन शान्त बैठा है। अब तक यह सुख

कहाँ था ? इसी की खोज में बूढ़ा हुआ ! अब मिला है ? वाह री दुनियां ! वाह रे संसार ! वाह री माया ! वाह री चमक ! अच्छा झाँसा दिया, अच्छा भटकाया, अच्छा उल्लू बनाया, अच्छा फन्दे में फँसाया । समय नष्ट गया अलग और बदले में मिला ईर्ष्या, द्वेष, लोभ, मोह, क्रोध, मत्सर ! रामराम ! भगवान् को धन्यवाद है । अन्त में मार्ग मिला तो । वाह ! कैसा सीधा मार्ग है, कैसी शान्ति है, कैसा सुख है ! कुछ चिंता नहीं, किसी बात की चिन्ता नहीं । भूख लगी है तो लगा करे, हम क्या करें ? मिलेगा तो खा लेंगे । शीत लगता है तो लगा करे, उसके लिये क्या हम चिंता करें ? हम ? नहीं, हमसे यह न होगा । हम किसी के लिये कुछ न करेंगे । हम तो बादशाह हैं ।

अरे भोले भाइयो ! यह सब क्या लाये हो ? हम इसका क्या करेंगे ? क्या कहा ? सम्मानार्थ लाये हो ? हो हो हो ! हमें सम्मान का क्या करना है ? ना, हम न लेंगे । हम क्या भिखारी हैं ? हम बादशाह हैं । तुम्हें लेना हो तो इससे लो । तुम हीन, दीन, दुखिया लोगो ! हाय ! कैसे अभागे हो—काम क्रोध चिंता के ऋणी, लोभ मोह के दास, तुच्छ प्राणी ! आओ, इधर आओ । यहाँ शान्ति है । इधर देखो । अपनी ओर

देखो, अपने भीतर की ओर देखो। कुछ मिलेगा ? भटक रहे हो, तरस रहे हो, तड़प रहे हो, अरे अबोध जनो ! किस लिये मिथ्या माया में फँस गये हो ? भ्रम में भटक रहे हो ? तन, मन और शांति को नष्ट करके कमाने में लग रहे हो ? इतना रुपया क्या करोगे ? इतना क्या खा सकते हो ? इतने बड़े महल क्यों बनाये हैं ? पागल हो ! मूर्ख हो ! तस्मे के लिये भैंस हलाल करते हो ? राई की प्राप्ति को पहाड़ परिश्रम करते हो ? तुम्हें सुख कैसे मिलेगा ? तुम्हारा कल्याण कैसे होगा ? ईश्वर जानता है, तुम भटक रहे हो। जो मनुष्य परिश्रम तो करे ढेर और प्राप्त करे मुट्ठी भर, वह क्या बुद्धिमान् है ? यह मत समझो कि जो कमाते हो वह तुम्हारा है। इसी फेर में मरे हो ! तुम इसमें से भोग कितना सकते हो ? वही तुम्हारा है, बल्कि उसमें से भी कुछ अंश। यह सब त्यागो, इन्द्रियों की लगाम छोड़ दो, मन को बर्खास्त कर दो, आत्मा की उपासना करो, अपने आपको देखो—भीतर ही भीतर इतना क्यों दौड़ धूप करते हो ? व्यर्थ थकते हो। जो है यही है। कस्तूरी मृग की तरह भटको मत। भगवान् तुम्हारा कल्याण करें। ईर्ष्या, द्वेष, हिंसा, तुम्हारे मन में न हो, प्रेम का प्रसार हो, आत्मा की ज्योति तुम्हारी पथप्रदर्शक हो। तुम अमर हो, तुम अमृत हो, तुम आत्मा हो, तुम ब्रह्म हो, तुम शुद्ध बुद्ध मुक्त हो। तथास्तु।

# मृत्यु

तू आ गई ? अभी से ? पहले से कुछ भी सूचना नहीं दी ? विना बुलाये ? विना ज़रूरत ? ना, तू लौट जा। अब मैं नहीं मरना चाहता।

एक दम सिर पर क्यों खड़ी है ? थोड़ा पीछे हट कर खड़ी हो। ठहर, ज़रा मुझे एक साँस और लेने दे। गला क्यों घोटे डालती है।

वह तू ही थी ? एक बार आँख भर कर तो देख लेने दे, कैसा तेरा रूप है। तुझे तो कितनी वार पुकारा। मन ने कहा था, सब दुःखों की शान्ति तेरे पास है। तब तू न आई थी।

कष्ट मिट गये। अब क्या काम है? जा। अब मैं तुझे नहीं चाहता। जा। वे दिन कट गये हैं। कितना लम्बा जीवन पथ काटा है। रास्ते भर चाहना ने उकसाया और आशा ने झांसे दिये, सिद्धि के नाम सदा दो धक्के मिले। मैंने सोचा, जब चल ही दिया हूँ, तो मञ्जिल तो तै करनी ही होगी। मैंने झूठ देखा न सच, पाप देखा न पुण्य, सिद्धि की आराधना की। जैसा बना, धर्म की हत्या की, आत्मसम्मान को जूते लगाये, स्वास्थ्य को संखिया दिया, सुख और शांति तक को दुर्वचन कहे। अन्त में सिद्धि मिली है—मिली कहाँ मिलने को सिर्फ राज़ी हुई है। अब तू कहती है—"चलो अभी चलो!" ना, अभी नहीं। अभी तो थाल परस कर सामने आया है। तेरा कसूर नहीं। सारा समय तैयारी में बीत गया। रसोई बनी ही बहुत देर से, इतनी देर से कि बनते बनते भूख मर गई, जठराग्नि जठर को खा कर बुझ गई, मन थक कर सोने लगा। पर जब बन ही गई है, तो खा लूँ—ज़रा चख लूँ। इतनी साधना की वस्तु कहीं छोड़ी जाती है? तू थोड़ी और कृपा कर, अभी जा। मेरी इच्छा होगी तो मैं फिर तुझे पुकार लूँगा। पहले भी तो पुकारा था। अनेक बार पुकारा था। तुझे शपथ है, बिना बुलाये मत आना। दुःख के दिन तो बीत गये, अब किसे मरने की चाह है?

लौट नहीं सकती ? किसी तरह नहीं ? यह तो बड़ा अत्याचार है। अच्छा, किसी तरह भी नहीं ? हाय ! मैंने तो कुछ तैयारी भी नहीं की। यात्रा क्या छोटी है ? यात्रा में ही जीवन गया, अब फिर महायात्रा ? हे भगवान् ! यह कैसा संसार है ? शास्त्र कहते हैं—'यह चक्र है।" अच्छी बात है·· चक्र है तो घूमा करे। किसी का क्या हर्ज है ? पर यह दूसरों को घुमाता क्यों है ? किस मतलब से ? किस अधिकार से ? यह तो खासी धींगा मुश्ती है। बड़ा अत्यचार है। जब तक जीओ तब तक ससार यात्रा, और जीने के योग्य न रहो तो पर-लोक यात्रा ! अभागा जीव केवल नित्य यात्री है, जिसे विश्राम का अधिकार ही नहीं। हाय ! पहले यह मालूम होता तो यह महल, यह सुख साज, ये ठाठ बाट, यह मोह मैत्री-व्यवहार क्यों बढ़ाता ? इस महल की सफ़ेदी के पीछे कितने दीनों का खून है ? इस मेरे बिछौने के नीचे कितनों की रोटी का सत्त्व है ! तब यह बात मालूम हो जाती, तो यह सब क्यों करता ? तब तो सोचा था। एक दिन की बात तो है नहीं, जो दुःखम सुखम काट लें। मरने वाले मरें। घर आई लक्ष्मी को क्यों छोड़ें ? हाय ! अब उन्हें कहां पाऊँ। उनका व्यर्थ शाप लिया। मृत्यु ! थोड़ा ठहर ! अब यह सम्पदा तो व्यर्थ ही है। ठहर ! इसे उन्हें बाँट जाऊँ जिनके कण्ठ से निकाली

गई है। पर उनमें कितने बचे हैं? कितने भूख से तड़प कर मरे, कितने जेल में मिट्टी काटते मरे। उनकी स्त्रियों ने जवानी में विधवा होकर मुझे कोसा। यह माना कि उन पर मेरा ऋण था। पर यदि उन पर नहीं था—सचमुच नहीं था, तो क्या मुझे उन्हें जेल में डलवा देना चाहिये था? पिटवाना चाहिए था? वर्तन कपड़े नीलाम करा लेने चाहिए थे? मुझे कमी क्या थी? बुरा किया, गजब किया। हे भाइयो, क्षमा करना। अकेला जा रहा हूँ। मृत्यु! मृत्यु! क्या इसमें से थोड़ा भी नहीं ले जा सकता हूँ? थोड़ी सी, सिर्फ़ तसल्ली के लिये। क्या किसी तरह नहीं? हाय! हाय! अच्छा मृत्यु! ले आधा ले ले। इस समय टल जा। सब ही ले जा, पर मुझे छोड़ दे।

हरे राम! तुझे दया नहीं है। कैसी निष्ठुर है, मूर्तिमती हत्यारी है। ऊपर क्यों चढ़ी आती है? ना—ना—छूना मत। हाथ मत लगाना। छूते ही मर जाऊँगा! हाय! हाय! सब यहीं रहे? मैं अकेला चला। कुछ भी पहले से मालूम होता, तो तैयारी कर लेता। भगवान् का नाम जपता, पुण्य-धर्म करता। कुछ भी न कर पाया। विश्राम के स्थल पर पहुँच कर एक साँस भी अघा कर न ली कि डायन आ गई। हे भगवान्! हे विश्वम्भर! हे दीनबन्धु! हे स्वामी! हा—नाथ! हे नाथ! हे नाथ! तुम्ही हो—तुम्ही हो—तुम्ही।

## रुदन

अन्त में वह घड़ी भी आ ही पहुँची। मुझे भास गया, कच्चे धागे में तलवार लटक रही है, क्या जाने कब टूट पड़े। हवा के झोके झकजोर रहे थे। मन रोना चाहता था पर स्थान न था। रात ही को यह विचार लिया था। सुबह जब नीचे उतरा, माता ने कहा—"बेटा! कला को देखना तो, आज वह कैसा कुछ करती है। मेरा कलेजा काँप उठा। मैंने मन में कहा—क्या घड़ी आ पहुँची? हिम्मत करके भीतर गया। अन्धेरा था। सारी खिड़कियाँ बन्द थीं। एक मिट्टी का दिया टिमटिमा रहा था। मैंने खाट के पास जाकर देखा—काँप

गया। सच मुच घड़ी आ पहुँची थी। मैं एक टक देखता रहा-न बोला, न चाला। माता ने कहा—"बेटी! देख तो यह कौन है?" उसे चैन नहीं था। साँस में कष्ट होता था। उसने उस कष्ट को सह कर मेरी ओर देखा। आँखें सफेद थीं, वे फ़ट कर दूनी हो गईं थीं। उन्हीं आँखों में से आँसुओं की धार वह चली। मुझसे कुछ भी न बन पड़ा। माता ने उसके आंसू पोंछ कर कहा-"बिटिया! देखो तो यह सामने कौन है।" कला ने बड़े कष्ट से कहा—"बड़े भैया।" इतने ही में वह हाँफ़ने लगी। उसे दो एक हुचकी आईं। पिता जी उसे गोद में लिये बैठे थे। उन्होंने गद्गद कंठ से कहा—"घबराओ मत भाइयो! सब भगवान् से प्रार्थना करो, अब तो यह हमारी है नहीं, भगवान् दे जायँ, तो दे भी जायँ! वे संभल न सके, रोने लगे। कला उनकी गोद में झुक गई। उसका रंग फक हो गया था। सब झपट कर ऊपर लपके। सबने मानो एक मन, एक प्राण, एक स्वर से कहा—"कला! कला!" मैं ठहर न सका। वहाँ से साँस बन्द करके बाहर भागा। बाहर उसके सुसराल के आदमी, उसके पति, उद्विग्न बैठे थे। सब बोले—"क्या हाल है?" मैंने बोलना चाहा,-पर बोल न सका। भीतर से रुदन उठा। प्रथम एक कण्ठ, पीछे

अगणित—अथाह गगनभेदी रुदन। सब ने कहा—"क्या हो गया?" पिता पागल की तरह दौड़ आये। उनकी आँखों में आँसू नहीं थे। उन्होंने गाकर कहा—"लुट गया धींग धनी धन तेरा।" उनके नेत्रों में उन्माद था। दो चार पड़ोसियों ने उन्हें पकड़ कर धैर्य रखने की प्रार्थना की। उन्होंने करारे स्वर में कहा?—मैं क्यों रोता हूँ?, मैं क्या बालक हूँ? मुझे क्या तुम बेसमझ समझते हो?"

मैं यहाँ भी न ठहर सका। भीतर गया। माता ने आकाश फाड़ रक्खा था। वह कला के शरीर को छोड़ती ही न थी। मैंने उसे गोद में लिया। पर कुछ बोल न सका। मैं भी रो रहा था। मन को रोका। मैंने कहा—"अम्मा! रोओ मत। तुम्हारी बेटी का भाग्य कितनों की बेटियों से अच्छा है। वह जहाँ गई, धन धान्य लक्ष्मी को लेकर गई। अब वह सुहागन ही पृथ्वी से जा रही है। ऐसा सौभाग्य कितनी स्त्रियों को मिलता है?"

माँ को कुछ आश्वासन मिला। उसके उन्माद पर कुछ सावधानी के छींटे पड़े। उन्होंने गगनभेदी क्रन्दन छोड़कर कला का गुण गान शुरू किया। अब मैं ठहर न सका। स्मृति ने कष्ट देना प्रारम्भ किया। बचपन से अब तक के चित्र सामने आने लगे। पिता जी ने बाहर से ही स्वर

अलापा—"लुट गया धींग धनी धन तेरा।" मैं वहाँ से भी भागा। ऊपर जाते हुए देखा, सीढ़ियों में सुभगा पड़ी ठुसुक रही थी। मैं उसे उठा कर ऊपर ले चला! मेरे छूते ही वह बिखर गई। वह क्रन्दन, वह मर्मस्पर्शी उक्तियाँ, वह भयंकर हाय, सर्वथा असह्य थी। जाती कहां? छाती गले तक भर रही थी। जरूरत रोने की थी, पर रोने को जगह न थी। जगह एकान्त चाहिए। पर उस घर का वायु मण्डल रुदन से भर रहा था। पड़ोस की स्त्रियाँ घर घर में जुट रहीं थीं। पड़ोसी द्वार पर इकट्ठ हो रहे थे। आश्वासन रुदन को बढ़ाता था। धैर्य का ठीक न था। विकलता थी, जलन थी, सन्ताप था, खिसियाहट थी, अशक्ति थी, लाचारी थी और रुदन था, रुदन था और रुदन था।

## लालसा

ना ! उसका नाम नहीं बताऊँगा। लज्जा जीने न देगी। वह नाम जहरे क़ातिल है। इतने दिन हुए, पर आज तक उससे रोम रोम जल रहा है। विचार शक्ति छितरा कर बिखर गई थी, बुद्धि पुरानी रुई की तरह उड़ गई थी। मेरे सुख और दुःख के बीच वही एक नावों का निर्मूल पुल था। जब मैं लालसा की नदी के किनारे पहुँचा तो देखा—जहाँ मैं खड़ा हूँ उसके चार ही क़दम के फ़ासले पर-वह पुल है, मेरा कसूर क्या था ? इतने नजदीक पुल को छोड़ कर कौन तैर कर पार करेगा ? पार करने पर—बस वह दिन है और आज का दिन है।

उस पार जाना जरूरी था। लालसा की नदी बेतरह चढ़ रही थी और किनारे की भूमि उर्वरा हो रही थी। पास में सुख बहुत थोड़ा था। उसने कहा—"कुछ तुम्हारे पास है कुछ मेरे। आओ इसे बो दें। एक के हजार होंगे। अभी ज़िन्दगी बहुत है। इतने से कैसे चलेगा?" मेरा दिल घावों से छलनी हुआ पड़ा था, न मुझे रुचि थी, न उत्साह, न हौंस। इसके सिवा, मुझे बोने का तज़ुर्बा नहीं था। बोना मेरे प्रारब्ध के अनुकूल भी नहीं था। जब जब बोया, सूका पड़ गई या वन-पशु चर गये। पशु बने बिना रखाना कठिन है। मुझे ख़ूब याद है। मैंने बहुत नांह नूंह की थी। मैंने कहा था—"मुझे कहाँ बोना आता है? क्यों पास की माया को मिट्टी में मिलाती हो? ना, मुझे इसकी हौंस नहीं है। तुम जाओ।"

इसी पर उसने मुझे मूर्ख बनाया। मेरा मज़ाक उड़ाकर कहा—"मूर्ख! देखता नहीं है। ऐसी कितनी वार चढ़ती है? किसके इतने भाग हैं? बोने वाले एक एक बूँद को तरसते हैं। औसर चूकने पर क्या है? बो-बो-बो।"

मैं मूर्ख बन गया। स्त्री का मूर्ख कहना नहीं सहा गया। पर मूर्ख बन गया। जो कुछ था उसे दे डाला। भूमि उर्वरा थी, वह उगा भी, पका भी और मुझे मिला भी। पर पचा

नहीं। शरीर ढेर हो चुका था। इतने दिनों के आँधी मेहों ने कुछ न छोड़ा था। मैं गिर गया खा कर! लोग भूखों मरते हैं, मैं अघाकर मरा। धौले केशों पर धूल पड़ी। बुढ़ापे की मिट्टी ख्वार हुई। बात बनकर बिगड़ी। आबरू की पगड़ी की धज्जियाँ उड़ गईं। मेरा क्या अपराध था? साहस में तो कसर छोड़ी न थी। चिन्ता की भयंकर आग इस तरह छाती में छिपाई थी कि एक लौ भी न दीखने पाई। शोक के घाव कपड़ों से ढक लिये थे। चेहरे की झुर्रियों को हँस कर और आँखों की रुखाई को चश्मे से छिपा लिया था। पर हाय रे बुढ़ापे! तेरा बुरा हो। तेरा सत्यानाश हो। अठ्यानाश हो। तैंनें सब गुड़ गोबर कर दिया। तैंनें मरे को मारा। तैंनें सूखे पेड़ को जड़ से ही उखाड़ पटका, निर्दयी!।

उसे कुछ परवा ही न थी। हँसती थी। उसी तरह बल्कि उससे भी अधिक ज़ोर से। सफलता का गर्व उसके होठों और नेत्रों में मस्ती कर रहा था और यौवन का गर्व उसकी छाती से फूटा पड़ता था। मैं कहाँ तक तन कर खड़ा होता? मैं हार गया। वह सब कुछ ले चली। मैंने घायल सिपाही की तरह आँखों के अनुनय से रस की एक बूँद—सिर्फ एक बूँद माँगी थी। क्या उस सरोवर में एक बूँद से घाटा पड़ जाता? जब मेरे दिन थे तो बिन माँगे छक जाता था। वही मैं था। वह

दुपहरी के सूर्य की तरह ज्वलन्त नेत्र दिखा कर चली गई। कलेजा तक झुलस गया। यही दुनिया है। इसी में रहने को प्राणी क्या क्या करता है। यही दुनिया का अन्त है। जाने वालों के लिये दुनिया का यही प्यार है। वाह री दुनिया! और वाह रे तेरा अन्त!!!

# मुक्ति

यही है वह। पर न देख सकता हूँ—न समझ सकता हूँ बुद्धि चरने चली गई, मन का पता नहीं। कठिनता से इतना मालूम होता है कि मैं हूँ, परन्तु कहाँ और कैसा? न कोई परिधि न रूप-रेखा। न भार न अवकाश। मानों मैं नहीं हूँ। तब मेरा यह ज्ञान किस आधार पर है? एक ज्योति चारों तरफ़ फैली देखता हूँ, पर उसके केन्द्र का कुछ पता नहीं लगता। ज्ञान की सारी गुत्थियाँ सुलझी हुई अनुभव होती हैं पर वह ज्ञान कुछ समझने में सहायता नहीं करता है। सब को छूता हूँ, सब रसों का स्वाद बराबर आ रहा है, सब स्वर व्याप्त हो रहे

हैं, सब गन्ध बस रही हैं। पर किस तरह ? सो पता नहीं लगता। अपूर्व है। सब अपूर्व है। यहाँ सब प्राप्त है। अब मालूम होता है, इच्छा एक रोग था। मन एक बेगार थी। इन्द्रियाँ भार थीं, मूर्ख था। इन्हें ख़ूब सजाया उल्लू की तरह नाचा। गधे की तरह लदा फिरा और अपराधी की तरह बँधा रहा। ठहरो। मुझे अपने आप को समझ लेने दो। वाह ! मैं क्या हूँ ? जहाँ इच्छा जाती थी अब वहाँ मैं जा सकता हूँ, जो मन करता था वह मैं अब कर सकता हूँ। बड़ा मजा है, बड़ा आनन्द है, बड़ा सुख है। कभी नहीं मिला था। मानों मैंने स्नान किया है। या ? ठहरो-सोचने दो, कुछ भी समझ में नहीं आता। मानों तंग कोठरी की क़ैद से निकल कर स्वच्छ हरे भरे मैदान में आ गया हूँ। कहीं भी दर्द नहीं है। कहीं भी कसक नहीं है। न प्यास है न भूख। न उठना, न बैठना, न सोना। सब कुछ मानो एक साथ स्वयं हो रहा है। प्रतिक्षण हो रहा है। यह क्या है ! इतना तेज ! इतना व्याप्त! यह लो, लीन हो गया। जैसे लहर लीन हो जाती है, जैसे स्वर लीन हो गया। वह भी मैं ही हूँ ! मैं ! अनन्त में फैल गया हूँ ! न आदि है न अन्त, न रूप है न स्पर्श—केवल सत्ता है। वह शुद्ध बुद्ध मुक्त है। प्यास बुझ गई है। कांटा सा किलल गया है। नींद सी आ गई है। कुछ नहीं कह

सकता। कथन के बाहर है। प्रकाश का कण हो गया हूँ।
कण का प्रकाश मैं हूँ। व्याप्त सामर्थ्य की धार बह रही है
पर क्षय नहीं होती। वह कहीं से आ भी रही है। न शी
है न उष्ण, न इधर है, न उधर। कहना व्यर्थ है। अ
अप्रकट कुछ नहीं। प्राप्य कुछ नहीं। महान् कुछ नहीं
किसी का अस्तित्व नहीं दीखता। केवल मैं हूं। मैं वही
यह वही है। यही है वह।

# वह

# वह

वह सोने की न थी, इस्पात की थी। पर मैं उसे हीरों के बरावर तोल कर भी विछो देने वाला न था। वहुत दिन से हृदय मन्दिर में प्यार और कोमलता की एक ज्योतिर्मयी स्वर्णप्रतिमा को खोज में भटक रहा था, स्वर्ण नहीं मिला, प्रतिमा भी नहीं मिली। यह मिली। उस समय वह एक खेड़ी का अनघड़ टुकड़ा था। मिट्टी और पत्थर से मिला हुआ, मैला और भदरंग। मैं उसे उठा लाया, सोचा क्या हर्ज है, स्वर्ण न सही-यही सही, इसी की प्रतिमा वना कर उस मन्दिर में प्रतिष्ठित कर दूँगा। पर शीघ्र ही समझ गया—यह मूर्खता

की बात होगी। पर, स्वर्ण में यदि कुछ बनने की शक्ति है, तो इस्पात में भी तो कुछ बनने की शक्ति है? बुद्धिमानों को जिस पदार्थ में जो बन सके, उससे वही बनाना चाहिये। मैंने प्रतिमा बनाने का विचार ही छोड़ दिया। मैंने उस खेड़ी के भदरंग टुकड़े को भट्टी में डाल दिया। ज्वलन्त उत्ताप में तप कर उसका रंग भी लाल हो गया। फिर मैंने धड़ाधड़ उस पर चोटें कीं। धड़ाधड़। फिर पीटा; फिर तपाया। तह जमाई। तपाया और पीटा। ग्रीष्म की दुपहरी, झुलसाने वाली लूँ और वह भट्टी का असह्य उत्ताप, जवानी की नंगी छाती पर सहा। पसीना कालौंस और मैल से शरीर भर गया, कोमल स्वच्छ हाथ कठोर हो गये। पर मैं उस लोहे के टुकड़े के पीछे पड़ गया। जवानी के सारे उमंग भरे दिन उसी कड़े परिश्रम में, ताप—पसीने और कालौंस में निकल गये। मेरे कितने ही मित्र, जिन्हें मैंने बाल काल में उस कल्पित प्रतिमा की मोहनी झाँकी करने का वचन दिया था, अपने लिये एक एक प्रतिमा ले आये थे। वे शीतल वायु के झकोरों से भरी कुञ्जों में मुग्ध और तृप्त होकर उसे हृदय मन्दिर में लिये बैठे थे। मैंने कभी उनके सुख सौभाग्य पर अपना मन न ललचाया, कभी उन पर डाह न की। अपने उस खेड़ी के टुकड़े को उनकी हीरों से लदी हुई सोने की

प्रतिमा से निकृष्ट न समझा। कारण, मुझे अपने ऊपर बहुत भरोसा था। अपने हाथ की करामात पर मैं इठलाता था। आख़िर मैंने अपनी समस्त जवानी में जी तोड़ परिश्रम करके उस खेड़ी के टुकड़े को इस्पात ही बना कर छोड़ा।

अब कार्य सरल था। आकृति, प्रखरता और उपयोग... बस। साँचे में ढाल कर मैंने उसकी आकृति बनाई! अब वह एक नाजुक तलवार थी। बिजली के समान उसमें चमक थी, धार की प्रखरता का क्या कहना था? बाल को चीर सकती थी।

उसी को मैंने हृदय मन्दिर के उस शून्य सिंहासन पर स्थापित कर दिया। उसी की मैं पूजा करने लगा। उसे देख २ कर मैं धीरे २ वीर और साहसी बनने लगा। राजा और सम्राटों तक उसकी पहुँच हुई और वह उनके हीरों और मोतियों के ढेरों से कहीं अधिक मूल्य की कूती गई!!

सिर्फ अकस्मात के संयोग की बात थी, और मेरी सनक थी, जो मैंने उसे इतना कमाया, ऐसा प्रखर बनाया। परन्तु मैंने कभी उससे कठोर काम नहीं लिया। उसकी आब और धार को कभी हवा न लगने दी। मैं सिर्फ़ उसकी धार से नित्य आँखों में सुरमा लगाया करता था।

मैंने उसे समय के लिये यत्न से रख छोड़ा था। ख़याल था, कभी आन और शान पर जूझने का समय आयगा, तब मेरी यह प्राणों से प्यारी वस्तु अपने जोहर दिखायगी। मेरे प्यारे मित्रों और सहयोगियों की सजीली स्वर्णप्रतिमाओं पर जब कोई भयंकर संकट उपस्थित होगा—तो मेरी यह सजीली चीज़ विजली के समान एक ही तीव्र और असह्य कड़क दिखा कर अपनी वास्तविकता चरितार्थ करेगी। उसी समय मेरा जीवन और परिश्रम सफल होगा !

दो वार देवता उसे मांगने आये, पर मैंने उन्हें नहीं दी। इस संसार की तो किसी वस्तु के बदले में मैं उसे दे ही नहीं सकता था, मैंने उसे लोकोत्तर वदले में भी देने से इन्कार कर दिया।

उस दिन प्रातःकाल जाग कर देखा—वह धरती में दो टूक हुई पड़ी है। पहले तो मैं कुछ समझा ही नहीं। मैंने सोचा स्वप्न है, उँगली दाँतों से काट कर देखा, वाल नोच कर देखा! स्वप्न न था सत्य था ! ! !

कलेजा मसोस कर वैठ गया। अब कुछ नहीं हो सकता था। मित्र और वन्धु सुनते ही दौड़ आये। किसी ने कहा—लो, यह स्वर्णप्रतिमा ले लो। किसी ने कहा—यह मेरे नेत्रों

की ज्योति ले लो। किसी ने कहा—यह मेरा सबसे बड़ा हीरा ले लो। पर! पर-खेड़ी का टुकड़ा तो किसी के पास न था। मैंने बैठे ही बैठे-जहाँ तक दृष्टि जा सकती थी-इधर उधर नीचे ऊपर देखा—नहीं था!!

खोजने जाने के अब दिन नहीं रहे। परिश्रम और उत्ताप सहने की शक्ति और साहस नहीं रहा। आराधना योग्य जवानी न रही। मन के हौसले और चाह मर गये। मैंने वे टूटे टुकड़े देवार्पण कर दिये। अब मैं अकेला बैठा हूँ, और सुस्ता कर जवानी के घोर परिश्रम की थकावट को उतार रहा हूँ।

# हास्य में हाहाकार

जीवन की हँसती हुई दुनियाँ का अन्त समय आ गया! ग्रीष्म के कृष्णपक्ष की सन्ध्या की तरह कराली काल की कालिमा ने उस भव्य मुखमंडल पर अधिकार जमा लिया। पर वे दोनों आँखें सन्ध्या के तारे की तरह आनन्द बखेर रहीं थीं। वह मुझे देखकर ज़रा हँसी। प्रतिपदा के चन्द्रमा की तरह अन्तिम बार उसकी धवल दन्त-पंक्ति के दर्शन हुये। प्यार का रहा सहा रस उस हँसी में आ जूझा। वह दारुण महायात्रा की घण्टी हृदय धाम में सुन रही थी-और अपनी स्मृतियों की गाँठ पोटली सँगवा कर बाँध रही थी। साथ ही सारे

संसार से न सह सकने योग्य उस वेदना को—वह उस अन्तिम हास्य में टालने की चेष्टा कर रही थी। उसने अपना सब साहस बटोर कर इकतारे के कम्पित स्वर में कहा—"स्वामी जी! खड़े क्यों हो, मेरे पास बैठ जाओ।"

मैं खड़ा रहा। सामने दूध के समान शैया पर वह ढेर हुई पड़ी थी। मुझे ऐसा प्रतीत हुआ—उस सन्ध्या के बढ़ते हुये अन्धेरे में मैं किसी नदी के तीर पर खड़ा हूँ और चाँदी के समान श्वेत बालुका के बीच क्षीणाङ्गी नदी दाव पेच खाती–चुप चाप पैरों के पास से बही चली जा रही है। अभि-लाषा और अतीत की छायायें मूर्तिमान होकर सामने आ खड़ी हुई। सब प्रिय और मनोहर थीं। पर मैं उन्हें देखकर डर गया। उसने फिर उसी स्वर में कहा—स्वामी! वास्तव में निराशा का नाम ही जीवन है—फिर भी मनुष्य उसे प्यार करता है, मेरे पास बैठो-और कहो-तुम जीवन को नहीं-मुझे प्यार करते थे!! मैं कुछ और ही सोच रहा था—मैं सोच रहा था—इस चलती बहती धार में से और एक घूँट पी लूँ? मैं घुटनों के बल धरती पर वहीं बैठ गया!!!

साफ़ साफ़ कुछ नहीं दीखता था। मानों महारात्रि आ रही थी। आँधी के झोकों से कम्पायमान जल की लहरों की तरह उसका श्वास उमण्ड रहा था। उसमें न हाय थी

न हास्य था—केवल एक अस्फुट ध्वनि थी। चौदह वर्ष का सुपरिचित हाथ ऊपर को उठा—चौदह वर्ष प्रथम मैंने उसे जिस उच्छाह और प्रेम से पकड़ा था—उससे भी अधिक उच्छाह और प्रेम से उसे मैंने अपने दोनों हाथों में पकड़ा। पर अब उसमें वह गर्मी नहीं रही थी। रस की बूँद सूख जाने पर भी वह हँसी। अटल अटूट हास्य था। उसमें स्पन्दन नहीं था, संकोच नहीं था, अस्थिरता नहीं थी, परिवर्तन नहीं था। मैं उसी में डूब गया। पीछे से एक हाहाकार उठा—और क्षण भर में घर का वातावरण दिगन्तव्यापी हाहाकार से भर गया!!!

## तत्क्षण

अनन्त कालीन पथिक की भाँति निःशब्द शान्ति शैय्या के पास खड़ी थी। और अनन्त मृत्युदर्शक तारे आकाश अश्रुबिन्दु की तरह चमक रहे थे। उसने अपने जाते हुये जीवन को धन्यवाद दिया और अपने अस्तंगत भाग्य को सराहते हुये कहा—"आज मेरे सौभाग्य का उत्कर्ष है" और सिर नवा लिया। एक क्षण अपने बिछुओं को उसने जी भर कर देखा।

मैं खो रहा था--पर उन नेत्रों ने ढूंढ़ लिया। अन्तस्तल में घुस जाने वाली मुस्कुराहट उसके अप्रतिम होठों पर आई, उसने क्षीण स्वर में कहा "अब तुम यहीं बैठे रहना"।

क्षण भर बाद, जब मृत्यु उसकी तरफ अन्धकार से अपना हाथ बढ़ाने लगी—तो उसने विश्वासपूर्वक उसे थाम लिया ! !

तब से—मेरा जीवन अकेला है, और वह मुझसे अलग है। पर अभी भी वह मुझे प्यार करती है। हमारा सम्मिलन ग्रीष्म और शिशिर के समान परस्पर का प्यासा था। और हमारा विछोह केवल मृत्यु न थी। अविश्वासी चाहे जो कुछ कहें—पर न वह प्रेम अभी खर्च हो गया है और न उसका व्यवच्छेद हुआ है।

मैं रोऊँगा नहीं। यद्यपि सब कुछ गम्भीर गर्त में डूब गया है पर मैं इसमें भूलने वाला व्यक्ति नहीं हूँ। विचार-धाराओं से वह दूर है। वह नक्षत्रों को बांच रही है। वह निकट और दूर से व्याप्त है। प्रशान्त रात्रि के सन्नाटे में मैं उसकी पसन्द का गीत गाता हूँ। और वह स्थिर होकर सुनती है।

मेरी विश्वासी आँखें उस पर अचल हैं। परन्तु मोह की मदिरा, जो प्यार ही की तरह मालूम होती है—दृष्टि के नीचे पड़ ही जाती है। और मैं अभागा असंयत हो उठता हूँ. परन्तु वे अतीत कण्टकित हाथ और उस मुख से सुवासित वातावरण

की ये शब्द कि—"वैवाहिक जीवन के दो भागीदार—और दोनों परस्पर निर्भर और विश्वासी" मेरे रक्षक हैं, उन शब्दों में ही मेरा समस्त जीवन स्वप्न था -और जीवन का कटुतर जीवन उसी से मधुर हो गया था—जैसे मिश्री से औषधि का स्वाद बदल जाता है। एक दिन वे दोनों पुराने हृदय एक ही सम और एक ही स्वर ताल पर फिर विवाह गीति गावेंगे।

# उस दिन

जिस दिन वह पुण्य पाणिपल्लव हाथ में लेकर मैं कृतार्थ हुआ, और उस प्रथम रहस्य क्षण में उसने नीरव उल्लास के साथ प्राण पुष्प चुपचाप मेरे चरणों में धर दिये, तब—विस्मृति समुद्र में डूबी हुई, जन्मान्तर-व्यापिनी पूर्व जन्म की सुकृति की एक अस्पष्ट रेखा पल भर को दीख पड़ी। हृदय के अगम्य गर्भ में जो छिपा था—सहसा एक क्षण में वह बाहर आ गया। प्राणों से प्राण मिले, खाना, पीना सोना पढ़ना, विचारना सब भूल गया। बुद्धि और विचार को छुट्टी मिल गई, कानों में प्रतिक्षण एक गूँज

भरी रहती थी। नेत्रों में सदा दिन निकला रहता था। सृष्टि सदा पुष्पवाटिका के समान दीखती थी। जिसमें वही एक पुष्प था—जिसका रूप रंग और वास मुझे और कुछ देखने न देता था।

परन्तु कैसा आश्चर्य है? एक झपकी के बाद ही आँख खोलने पर कुछ न पाया? जैसे इन्द्रियों को उन्माद हो गया हो। वह दीखती है पर समझ नहीं पड़ती। ये नेत्र दृष्टि से परे कुछ देखते हैं। ये अघोर चक्षु अनन्त से दूर कुछ सुन रहे हैं. पर मैं कुछ समझ नहीं सकता, मैं जड़ हो गया हूँ। फिर भी जीवित तो अवश्य हूं।

# न कहने योग्य

हाँ, उस दिन को आज सत्रह वर्ष व्यतीत हो गये। उठती जवानी नीचे को ढह गई। पर वह बात आज तक किसी से नहीं कही है। जिस दिन वह बालिका के वेश में सारे संसार की लज्जा को आँचल में समेटे, अपने बचपन और उसके सहचरों को त्याग कर—सहसा जीवन पथ पर मेरे पीछे चल खड़ी हुई थी, पर उस समय मैं कुछ कहने के योग्य न था। उसके बाद, जब वह स्त्रीत्व के तेज और प्रभाव को लेकर उस दुर्धर्ष जीवन संग्राम में—जिसमें योग देने की उसकी लालसा को सुन कर मुझे पहिले हँसी आ गई थी—उद्ग्रीव

होकर चली तब फिर मन में आया कि कह ही दूँ, पर मोह और अनवकाश ने कभी पीछा न छोड़ा। कभी एकान्तता न हुई। कभी अच्छी तरह देख न सका।

जीवन के ११ वर्ष बीत गये, जैसे सपने के दिन बीत जाते हैं, जैसे थकावट की रात बीत जाती है। हम दोनों धुन में मस्त, जवानी की उमंग में इठलाते हुए, बढ़-बढ़ कर—एक से एक बढ़ कर—उदग्रीव होने की स्पर्धा करते हुये-बढ़े चले गये, बढ़े चले गये, बढ़े चले गये!!!

एकाएक वह रुक गई। मैंने बहुत हिलाया डुलाया पर कुछ न हुआ। गर्दन झुकती ही गई। आँखें मिचती ही गईं। वह हांस, वह उमंग, हास्य—गर्व—तेज सब कहीं खो गया! जैसे इन्द्र धनुष खो जाता है। जैसे रबर के कुप्पे की फूँक निकल जाती है, उस घड़ी वह बात होठों पर ही आ गई थी, पर फिर वह पल भर भी न ठहरी।

अब तो कहने का कोई मौक़ा ही न रहा पर वह बात अब भी हृदय में वैसी ही धरी है। आँसुओं के साथ वह आँखों में आ जाती है और हास्य के साथ ओठों पर आ खड़ी होती है। मैंने उसे इन सत्रह वर्षों के दीर्घ काल में बड़ी कठिनाई और विवेक से, हिन्दुओं की जवान विधवा

बेटी की तरह दबोच कर भीतर ही रख छोड़ा है। हृदय मन्दिर के अन्तस्तल में उसके स्थान पर इसी को मैंने बसा लिया है। वही अब उसके बाद मेरी जीवनसंगिनी है। और वह अपने प्रिय निवास के पात्रों में अपने सुहाग भरे हाथों से लबालब स्नेह भर गई थी उसमें मैंने दिया जला दिया है। एक क्षण को भी मैंने उसके पीछे उस मन्दिर को सूना और अन्धेरा नहीं छोड़ा है। आंधी और तूफान के झोंके आये, दीये की लौ काँपी—पर बुझी नहीं। आशा होती है इस टूटती रात को पीली और ठण्डी घड़ियाँ भी, इसी धुंधले प्रकाश के सहारे कट जावेंगी। अभी पात्र में स्नेह है, बहुत है।

जब दिन का प्रकाश फैल जायगा, मैं उसे ढूंढने निकलूंगा। जहाँ मिलेगी; वहीं भेंट होते ही अबकी बार पहिले वह बात कह दूंगा। उसे छोड़ कर वह बात और किसी से कहने योग्य ही नहीं है।

# आँसू

तुमने, मृत्यु के समान ठण्डी और आशा के समान लम्बी निश्वासों के साथ बाहर आकर, उत्तप्त जल कण क्या पाया ? इतना भी न सह सके ? छी:, आप अधीर बने, मुझे भी अधीर बनाया, आखिर आब खोई।

तुमने कोमल हृदय के गम्भीर प्रदेश में जन्म लेकर इतनी गर्म और उतावल प्रकृति कहाँ पाई ? और देखते ही देखते आंखों में आकर एकाएक क्या देख कर पानी पानी हो गये ? निर्दयी ! हृदय का सारा रस निचोड़ लाये. क्या आँखों के तेज को बुझाने का इरादा था ?

हे अमल धवल उज्ज्वल उत्तप्त जल कण! हे हृदय के रसीले रस! ऐसा तो न करो, जब तक हृदय है तब तक उसी में रहो, उसे इतना न निचोड़ो। कुछ अपनी आबरू का ख़याल करो, कुछ मेरे प्यार का लिहाज़ करो, कुछ उस दिन का मान करो–जब रस बन कर रम रहे थे। कुछ उस दिन का ध्यान करो, जब बाहर आकर दुर्लभ दृश्य देखा था।

तुम उस दिन के लिये ठहरो प्यारे! जिस दिन अभिलाषा की साध पूरी होगी, तुम्हारा जी चाहे तो उस दिन तुम इन आँखों को बहा ले जाना, न हो अन्धी कर देना। मुझे फिर कुछ देखने की हौंस न रहेगी।

हे आनन्द के उज्ज्वल मोती! इन आँखों में तुम ऐसे सज रहे हो जैसे हरे भरे वृक्ष की नवीन रक्ताभ कोंपल। पर तुम्हारा ढरकना बहुत करुण है—बहुत उदास है, तुम ढरकते क्या हो; मानों प्यारों से भरा हुआ जहाज समुद्र में डूब रहा हो। तुम्हारे इस ढरकने का नीरव रव ग्रीष्म की ऊषा के प्रारम्भिक अन्धकार में अधजगे पक्षियों के कलरव के समान उदास मालूम होता है।

ढरक गये? हाय! तुम मेरी स्वर्गीया पत्नी के मृदुल प्यार की स्मृति की तरह प्यारे थे। तुम मेरे अनुत्पन्न पुत्र के छोटे से

होठों की निर्दोष मुसकुराहट की स्वप्नवासना की तरह मधुर थे। प्यार की प्रथम चोट की तरह गम्भीर और तूफ़ान की तरह जंगली थे !

# शरच्चंद्र

शरच्चन्द्र प्यारे ! आज कुसमय में वहाँ क्यों आये हो
जाओ, धीरे से खसक जाओ, हृदय सो रहा है आहट मत क
जाग जायगा। फिर उसे सम्हालना और सुलाना कठिन
जायगा। इतना हँसते क्यों हो ? निष्ठुर ! यही क्या तुम्ह
सुधावर्षण है ? यही क्या तुम्हारा सौन्दर्य है ? जब दिन थे
तब मैंने तुमसे होड़ बदी थी, तुम्हीं थक कर बैठ गये
आज उसी का बदला लेने आये हो ? क्षुद्र ! विपत्ति में उपहा
करते हो ? छीः

उस दिन गङ्गा के उपकूल पर, जब कलकलनिनादिनी ग

हर २ करती बही जा रही थी हम दोनों तुम्हें देख २ कर कुछ कह रहे थे। वे सब बातें तो अब याद नहीं हैं, पर वह समा तो सुर्मे की तरह आंखों में समा रहा है। हमने समझा था तुम हमें हँसता देख सुख से हँसते हो। पापात्मा! तुम्हें आज समझा अब तो वह दिन चला गया? अब और किसे क्या दिखाने आये हो? किसे लुभाने का इरादा है? मूर्ख! रस में रस रस है पर नीरस में रस विष है।

भागो यहाँ से, तुम्हारी चांदनी मुझे ऐसी प्रतीत होती है—जैसे मुर्दे पर सफेद कफ़न पड़ा हो, मैं डरता हूँ अब और नहीं देख सकता, हटो नेत्रों से दूर हो, नहीं मैं आखें फोड़ लूँगा!

# अपदार्थ

उस पथ की धूल की अपेक्षा, जिस पर तुमने सौभाग्य की चुनरी ओढ़ कर महायात्रा की थी, मैं कितना अपदार्थ हूँ ? उस विश्वास की अपेक्षा, जो तुम्हारा मुझ में था, उस छोटे से पौदे की अपेक्षा, जो दस दिन बाद तुम्हारी चिता पर उग आया था, उस अनथक काल की अपेक्षा, जो तुम से दूर रहते मैंने व्यतीत किया, और उस आवश्यकता की अपेक्षा, जो तुम्हें जीवन भर मेरी रही,

मैं कितना अपदार्थ हूँ ! कितना अपदार्थ हूँ !! प्रिये, तुम्हारे सन्मुख तब और अब, मैं सदा ही अपदार्थ रहा ! ! !

# वह सन्ध्या

जब सूर्य धीरे २ जल में डूब रहा था, और तारे उसके स्थान को ग्रहण कर रहे थे। तुम शुभ्र शिलाखण्ड पर पड़ी तल्लीन हो-उस अस्तंगत सूर्य को देख रही थीं। धवल अट्टालिका और आकाश का रक्त प्रतिविम्ब जल में काँप रहा था।

मैं तुम्हारे निकट आया और तुम्हें कम्पित हाथों में उठा लिया। तुम 'नहीं, न कह सकीं' केवल सलज्ज हास्य में झुक गई।

उस स्पर्श से ही, उसी क्षण—सम्पूर्ण तारुण्य मुझ में जाग्रत हो गया और सम्पूर्ण प्रेम तुम में। उस समय, पृथ्वी भर के पुष्पों के सौरभ को लेकर वायु तुम्हारी अलकावलियों से खेल रहा था।

परन्तु प्रिये, उस सन्ध्या की वह सन्धि कितनी कच्ची थी !!!

# उस दिन

उस दिन, जब मैंने तुम्हें ग्रहण किया था--अपना घर द्वार धन धरती सब तुम्हें दिया था। मेरी प्रतिष्ठा, आबरू, महत्व, शौर्य सब तुम्हारा हुआ था। मेरी शक्ति, सत्ता, स्वप्न और तेज सब तुम्हें मैंने दिया था, और दिया था अपना प्राण और उस का सर्वाधिकार।

तुमने न आँखें खोल कर उस महादान को देखा; न एक शब्द बोलीं, तुम चुपचाप अपने बहुमूल्य वस्त्रों और प्रच्छिन्न हृदय में उल्लास और आनन्द से तप रहीं थी।

बहिनों ने सुगन्धित द्रव्यों से तुम्हारी केशराशि को सींचा और पुष्पों से सेज को सजाया था।

माता ने अश्रुपूरित नेत्र और अवरुद्ध कण्ठ से कहा था—'मेरा बेटा पृथ्वी विजय कर लाया है'। हम आतुरता से सोच रहे थे, कब यह वाद्य ध्वनि बन्द होगी, कब रात्रि आवेगी, कब द्वार बन्द करने का धीमा शब्द होगा, और वह चिर अभिलषित रहस्य पूर्ण स्नेह स्रोत का उद्घाटन होगा।

प्रथम बार तुम जब बोलीं—तब तुमने कहा था—स्वामिन्! कितने लोग आप से भय खाते हैं और कितने आपके सन्मुख श्रद्धा से अवनत हो जाते हैं। मेरे जीवन के स्वामी, मुझे निर्भय करो, मुझे अभय दान दो, मुझे साहस दो कि मैं अपनी सबसे प्यारी वस्तु के निकट आऊँ।

× × ×

आज मैं अनुभव करता हूँ—प्रेम एक स्वप्न है और जीवन कदाचित् उससे कुछ अधिक!!

———

# आत्मदान

तुमने जब आत्मसमर्पण किया था—तब क्या आत्मा का प्रदान नहीं किया था ? अब अन्त में तुम कहाँ विश्राम करोगी ?

तुमने अपना स्वर्ण शरीर मुझे कुछ ही क्षण को दिया, और मैंने पुष्प की भाँति उसे ग्रहण किया, फिर तुमने मुझे त्यागना चाहा—मैंने तुम्हारे चरण चुम्बन किये और तुम्हें बिना बाधा के ही चला जाने दिया ! प्रिये, आत्मदान किसने दिया ? तुमने या मैंने ?

## शुभाग्नि

उस चुम्बन की शुभ्र ऊष्मा से मेरे ही अधरों ने फूँककर
ात्मा में आग सुलगाई है, वह आज हृद्गह्वर में कैसी जल
ही है। कैसी ज्योतिर्मयी उसकी लौ है। मैं उससे झुलसा तो
। रहा हूँ पर उसी के सहारे इस लोक से परलोक तक साफ़
ाफ़ देख पाता हूँ।

इस विनाश और अनन्त वियोग के वाद भी वही कोमल
श गुच्छ, वही मधुवर्षिणी दृष्टि, वही सुवर्ण देह यष्टि, वही
ाणा विनन्दित स्वर लहरी, वे रहस्यमय, भावावेशपूर्ण
धुरमन्दोच्चारित शब्द, और अस्तंगत सूर्य की रक्ताभरश्मिका
न्मुक्त प्रतिविम्ब !!

ओह, अक्षयपुण्यवती, इस मृत्यु के भिक्षुक का भी
कल्याण करो।

# पछवा हवा की तरह

पछेवा हवा की तरह एक बार क्षण भर को आओ
जिससे हृदय के सब घाव सूख जायँ। मैं जीवन के अं
तक उस क्षण की प्रतीक्षा करूँगा।

## ज्वलन्त सत्व

यह, उस पर्वत की कूट शिखा पर ज्वलन्त सत्व क्या है ?

वह क्या जल रहा है ?

वहीं तो सदा चन्द्रोदय होता था। और उसकी धवल ज्योतिर्मयी किरणें हृदय के अन्तस्तल तक चाँदनी कर दिया करती थीं। वे तुम्हारे दोनों नेत्र शुक्र और बृहस्पति के नक्षत्रों की भाँति उस चाँदनी में खिले सहस्रों फूलों को जीवन के उल्लास से परिपूर्ण स्वास लेते देखते थे।

देखो वे फूल अब अन्तिम श्वास तोड़ रहे हैं, वे पूर्ण विकसित हो चुके, वायु ने उनकी गन्ध बखेर दी, मधुप मकरन्द पी गए, कुछ बखेर गये। अब इनकी इसी रात्रि में समाप्ति है। प्रातःकाल तक ये सब झड़ कर गिर पड़ेंगे।

## वह पुष्प

उस पुष्प को तो देखो, सूर्य की किरणों ने उसे छुआ, वह खिल गया। कैसा सुन्दर था पर एक ही घंटे में देखो वह मुरझा कर झुक गया है। अब वह गिर जायगा।

ओह ! यह जीवन भी ऐसा ही रहा !!

# अभिलाषा

तुम सुख निदिया सोओ प्रिये, और मुझे कुछ सोचने दो, उन मृदुल अलकावलियों और सुगन्धित श्वासों के सम्बन्ध में जिन से मेरे चारों ओर का वातावरण ओत-प्रोत हो रहा है, और उस प्रेम के विषय में जिसकी स्मृति हृदय में आज भी वैसी ही है।

इन फूलों से लदे वृक्षों की सघन छाया में बैठ कर, कलकल बहती हुई गंगा की धारा का यह सौन्दर्य और एक बार देखलूँ, फिर तो जीवन के अस्तंगत दिवस के प्रकाश को इस अज्ञात अन्धकार की छाया ढाँपती चली आ ही रही है।

प्रिये, अपने विशुद्ध अन्तःकरण में मेरे लिये थोड़ा प्रेम और क्षमा अन्त तक बनाए रखना।

# निस्तब्धता

प्रिये, मैंने खूब गाया और खूब ही चुप रहा पर तुमने दोनों में से कुछ भी न चाहा।

मैं सदा ही अधिक बोला करता था, अब इतनी निस्तब्धता क्या तुम पसन्द करती हो?

# अतर्क्य लोक में

उस अतर्क्य लोक में क्या तुम मुझे कभी स्मरण करती हो ? उस अनन्त पथ के उस छोर पर, जहाँ प्रवाहित रात्रियाँ बनी रहती होंगी—इस लोक के प्रकाश का कोई कण होगा ? उन अघोर चक्षुओं और उस स्निग्ध सौन्दर्य का उसके बिना कैसे विकास होता होगा ?

हाय, मैं यह नहीं कह सकता कि मैं तुम्हारे प्रति विश्वास-नीय हूँ। परन्तु तुम्हारा वह प्राचीन सौरभ मेरी रक्षा करता है। कितने दिन रात और वर्ष व्यतीत हो गये हैं और हो रहे हैं, परन्तु तुम मेरे हृदय के वैसी ही निकट हो। तुम क्या अब

भी अपने हृदय में मेरे विचार रखती हो ? तुम छिप गई हो। पर मैं तुम्हारी स्मृति का स्वप्न सुख तो पाता ही हूँ।

यद्यपि बहुत से फूल फूलते और तारे चमकते हैं। पर मैं तो तुम्हारे उन विषादपूर्ण नेत्रों का सदा जाग्रत स्वप्न देखता हूँ जिन्हें मैं कभी नहीं भूलूँगा।

प्रिये, ठहरो, मेरा जीवन और यौवन खिसक कर तुम तक आ रहा है।

# एक किरण

प्रेम रूपी ऊषा की एक किरण फूटी, और जीवन जगत पर छाए हुए अन्धकार पर प्रकाश की एक क्षीण रेखा पड़ी। जीवन जाग उठा, जैसे ग्रीष्म के प्रभात में गुलाब खिल उठता है। परन्तु भोग वाद एक बादल का टुकड़ा बनकर आया और प्रभात का विकास होते २ समस्त आकाश मेघाच्छादित हो गया।

तुम कब से मेरे हृदय के निकट थीं, मुझे कुछ भी स्मरण नहीं। उसी ऊषा के क्षणिक प्रकाश में मैंने तुम्हें अचानक देखा, तुम सो रहीं थीं। तुम्हारी स्निग्ध आँखें कुछ बन्द थीं और ओष्ठ सम्पुट थोड़ा खुला था।

तुम प्रत्येक प्रश्वास के साथ मेरा नाम ले रही थीं, क्षण २ में तुम्हारे मुख पर लाली और आनन्द की प्रभा फूट पड़ती थी—मैं तुम्हारे स्वप्न सुख को समझ रहा था।

तभी, भोग वाद ने ठण्डी और नन्हीं बूँद गिराईं और तुम्हारी आँखों और होठों की मनोहरता शोकपूर्ण हो गई।

आह, मैंने तुम्हें यह भेद कभी नहीं बताया कि मैंने तुम्हें गोद में लेकर जगाने की कितनी चेष्टा की थी।

# तुम कहाँ हो

तुम कहाँ हो ? तुम्हारा सौरभ और सौजन्य भी क्या तुम्हारे साथ है ? मैं वायु के झोकों से तुम्हारा पता पूछता हूँ, मेरा हृदय टूट गया है, लेखनी घिस गई है और भाव बिखर गये हैं। लोग मुझे देखते हैं पर समझ नहीं पाते। सन्ध्या होते ही ज्वाला का ज्वार उठता और मैं वेदना में डूब जाता हूँ।

## वसन्त प्रभात

पक्षी और मनुष्य तो जग गये ?

पक्षी चहचहा रहे हैं,

युवतियाँ गा रही हैं।

गो-दोहन हो रहा है।

मैं तुम्हारी प्रतीक्षा में बैठा हूँ।

उठो प्यारी, उठो।

धूप तो फैलने लगी।

ओह, आकाश का नील वर्ण कैसा उज्ज्वल है।

सरसों के खिले फूलों की महक लेकर हवा इधर को आ रही है।

प्रिये, क्या तुम आ रही हो ?

वह कौन प्रस्फुटित बालिका जल की गगरी बग़ल में दबाए जा रही है।

वह कौन प्र‸दा पुत्र को हाथों में उठाकर उसका चुम्बन गमनोद्यत पति क‸ करा रही है।

अरे ! यह तो तुम्हारी सखी............

ओ प्रिये, ज़रा देखो तो, ये सन्ध्या को फिर मिलेंगे।

वह दूल्हा किस सजधज से ब्याहने जा रहा है; साह लग तो लग गया ? स्त्रियाँ घर-घर गीत गा रही हैं।

ये चट्टानें शताब्दियों से मिली हुई हैं, फिर प्रिये, क्या हम नहीं मिलेंगे ?

यदि तुम न आओगी-तो आनन्द के अतीत की स्मृति कैसी शोकमयी बन जावेगी।

## वसन्त

प्रिये, वसन्त आया है। सारे पत्ते झड़ गये हैं; और वृक्षों में नई कोंपलें निकल आई हैं।

हूबहू तुम्हारे उत्फुल्ल हास्य पूरित अधरोष्ठ की भाँति यह गुलाब खिला है। यह फूल से भरी डाली तुम्हारे शोभनीय मृदुल गात की भाँति झंझावात में झूम रही है। मैं इसे छुऊँगा नहीं। पर मैं यहीं बैठा रहूँगा जब तक यह सूख कर झड़ न जाय।

# पथिक

ज्येष्ठ बीत रहा है।

कैसी दुर्धर्ष दुपहरी है।

ज्वलन्त सूर्य से पृथ्वी तप रही है।

घास सूख गई है, और वनस्पति मुर्झा रहीं हैं। चील अण्डे
ोड़ रही है, तमाम रात गीदड़ रोते रहे हैं, जगत भयानक
तीत होता है, प्राणियों के प्राण मुँह को आ रहे हैं।

सामने यह किसका मनोरम उद्यान है? कैसा शीतल
ौर मीठे पानी का झरना वहां बह रहा है? वे सघन कुंज

किसने बनाई हैं ? उधर की आई हुई वायु का स्पर्श कैसा प्राणों को हरा कर देता है। वह पुरुष धन्य है जो इस उत्तप्त ग्रीष्म में ऐसी हरी-भरी निकुंज में वास कर रहा है।

लो, सन्ध्या हो गई। दिन का प्रकाश बुझ गया। सन्मुख वह अग्निज्वाला ऐसी मालूम होती है जैसे किसी क्रुद्ध रक्तपिपासु जन्तु की लाल लाल आँखें।

दूर जंगल में कोई पशु चिल्ला रहा है। आकाश में तारे उदासीनता से टिमटिमा रहे हैं।

प्रियस्मृतियाँ हठात् उदय हो रहीं हैं।

ओह ! तब रात्रि कितनी स्निग्ध प्रतीत होती थी परन्तु वह कितनी शीघ्र समाप्त हो जाया करती थी।

वे सुगन्धित अलकावलियाँ उन निमीलित नेत्र सम्पुट पर लालायित स्वच्छन्द ओष्ठाधर, और·····और·····हाय, अब उसे स्मृतिपथ से दूर करना ही अच्छा है। इस एकान्त अन्धनिशा में।

मेरे नेत्र निष्प्रभ हो रहे हैं और मेरा ज्ञान नष्ट हो रहा है। प्रिये, उस सुख स्वप्न की आशा में, तुम्हारे चिरलुप्त नेत्रों के प्रकाश में मैं एक झपकी लिया चाहता हूँ; किन्तु, यदि आज की रात्रि में मेरे जीवन का अन्त होता तब—जब मैं

अनुभवित—तुम्हारे स्वीकृत प्रेम का स्वप्न देख रहा होऊँ।

—मैं अकेला हूँ, मेरी यात्रा समाप्त हो चुकी है, आज की रात्रि यहीं विश्राम करूँगा। अभी भग्न दीवार की इस छाया में बैठकर मैं थकान उतार रहा हूँ। इस चटखती हुई चमेली की छाया में, जहाँ सूखे हुए फूल झड़े पड़े हैं। यदि मुझे विश्राम का स्थान मिल जाय तो कैसा? मेरी समस्त स्मृतियाँ उन सूखे पुष्पों की भाँति झड़ जायँ तो कैसा?

मुझे प्रतीत होता है कुछ अज्ञात निर्मम वस्तु मेरे कण्ठ में हार बन कर लटक रही है। कोई निर्दय शक्ति सूर्यमण्डल में विना लज्जा और भय के हँस रही है।

किन्तु प्रिये, उस पुरुष के लिये यह सब क्या है जो कब का नष्ट हो चुका है।

मैं यह सोच रहा हूं जब जीवन की पूर्ण कलाएँ विकसित हो रहीं थीं, एक मनोरम पारिजात कुसुम की भांति वह खिल रहा था, शोभा और सौरभ फूट फूट कर बह रहा था, तब—प्रेम कहीं से आ गया और उसने क्षण भर ही में सब कुछ विनष्ट कर दिया।

मैं अकेला बैठा हूँ !!

मैं वासना त्याग चुका हूँ, प्रेम की याचना करने का

भी अब साहस नहीं कर सकता। मुझे अब प्यार नहीं, ज़रा-सा विश्राम भर चाहिए-किन्तु उस श्वास और स्पन्दनहीन शीतल वक्ष के निकट।

# आओ

प्रिये, अपने उस स्निग्ध प्यार की एक कण मेरे लिये भेजो। अथवा मुझे मरने दो।

इस सुनसान घर में सुखद स्मृतियाँ सो रहीं हैं। कभी कभी तुम्हारी अस्पष्ट पदध्वनि सुनाई पड़ती हैं क्या तुम आ रही हो ?

प्रतिदिन प्रभात में उठकर मैं आशा करता हूं कि तुम आओगी। मैं दिन भर प्रतीक्षा करता रहता हूं, रात होती है और मैं प्रतीक्षा करता हूँ। आकाश में एक अस्पष्ट छाया मुस्करा

कर सिर हिला देती है। यह हमारा चिर परिचित स्थान—जहां हमारे हास्य और जीवन का रहस्य नग्न हुए थे प्यासे राक्षस की भांति मेरे रक्त और आंसुओं को पी रहा है।

क्या तुम न आओगी? हाय, यह तुम कैसे सहन करती हो? एक वार आओ, केवल एक वार। मरने से पूर्व एक वार तुम्हारा स्नेह-सुधा पीने और सुखद गोद में अन्तिम श्वास लेने की अभिलाषा है।

जल्दी, प्रिये, जल्दी। जीवन की लौ जल चुकी है और अब वह बुझ रही है।

## तारों की छाँह में

तारों की छाँह में जब तुम सोती थीं, मैं तुम्हें निहारता था। तुम्हारी केशराशि की सुगन्ध को लेकर वायु वहा करती थी और मैं उस गम्भीर सुख में मग्न बैठता था। तुम सोती हुई कैसी मोहक लगतीं थीं।

अब भी मैं तुम्हें तारों की छांह में उसी तरह प्रतिदिन सोती देखता हूं, पर वह सुगन्धित वायु मानों मुझ से दूर ही दूर मँडराती है। मैं उसे स्पर्श नहीं कर पाता।

प्रभात में पुष्प की प्रत्येक पंखड़ी में मैं उस सुगन्ध को ढूंढ़ता हूं, वायु के प्रत्येक परमाणु में खोजता हूं पर नहीं मिलती।

मुझे अब भस्म होना है। और परमाणु रूप होकर उसे खोजना है।

# सुखद नींद

ओह, इस प्रकार चुपचाप इस एकान्त में ऐसी सुखद नींद सोना कैसा अभूतपूर्व है।

न साथी न संगाती। अकेली—केवल अकेली। पर प्रिये; इतनी एकान्तप्रियता बड़ी भयानक है। ऊषा का उदीयमान प्रकाश और सन्ध्या का वृद्धिगत होता हुआ अन्धकार इस प्रसुप्त अनिन्द्य यौवन के इस पार से उस पार तक चला गया। विष्णुपादामृत ने अलकावालियों से क्रीड़ा की; प्रकाश की उज्जवल किरणों ने उन अधर सम्पुटों को चूमा, लज्जा की लाली आई और गई पर वह निद्रा फिर न टूटी।

कदाचित यह वासन्ती वायु का उन्मत्त झोंका इस सुखद नींद को भंग करे।

# प्रत्येक ज्येष्ठ को

प्रत्येक ज्येष्ठ के उत्ताप में मैं भुनता हूं। उस दिन को कितने दिन बीत गये ? जब तुम्हारे हाथ का शीतल जल पिया था। प्रत्येक रात को तुम्हारे उसी प्रश्वास से सुरभित वायु मुझे थपकियाँ देकर सुलाना चाहती है। परन्तु वह जल.........वह शीतल जल.........

प्रेम का रस सूख जाने पर मनुष्य रोते हैं, पर कितने उसके विषय में सोचते हैं।

## वेदना

हृत्पटल के उस घाव की वेदना पर, जो अब पुराना पड़ गया है क्या तुम द्रवित होती हो ? मैं प्रतिक्षण, प्रत्येक श्वास में उसी वेदना के सहारे जी रहा हूं, जैसे अफीमची अफीम की कड़वी चुस्की पीकर जीता है। वह वेदना अफीम ही की भाँति कड़वी और ज्ञानतन्तुओं को सुन्न कर देने वाली है। उसके नशे की झोंक में मैं प्रत्यक्ष देखता हूँ कि हृदय-सरोवर में अकेला ही एक कमल पुष्प खिला खड़ा है, तब मैं सोचता हूँ—मेरे समान भाग्यशाली इस पृथ्वी पर कौन है ?

## स्वप्न

अभी मैं तुम्हारा स्वप्न देखकर उठा हूं। उस स्वप्न को देख कर मैं व्याकुल हो उठा हूं। वे तुम्हारे स्निग्ध नेत्र और सजीव अलकावलियाँ मैंने अभी देखीं हैं। आह, स्वप्न एक मिथ्या वस्तु है परन्तु मैं उसे तुम्हारे ही समान प्यार करता हूँ। वे कितनी शीघ्र खो जाते हैं जैसे तुम खो गईं। पर प्रिये, मेरे जीवन की आशा डोरी उसी स्वप्न राज्य में होकर तुम तक पहुँचती हैं।

## सिर्फ एक बार हँस कर

अस्तंगत सूर्य के रक्ताम्बर में 'धीमे टिमटिमाते तारों के समान उन नेत्रों से एक चितवन फेंक कर तुम एक बार हँसी थीं। और तब मैंने अपने जीवन के समस्त उल्लास के साथ दौड़कर कहा था—ठहरो तनिक।

पर तुम ठहरीं नहीं। तुम किस लोक में हँसने को चली गईं ? सिर्फ एक बार हँस कर!!

# जीवन पथ पर

मैं जीवन पथ पर बड़े उल्लास से चला, पर शोक़ मेरा साथी हो गया, भय और वेदना उसके साथ थीं। मैंने उन पर विश्वास किया और वे अपने मार्ग पर मुझे ले गये। उनके नेत्रों में आशा की ज्योति देखकर मैं ठगाया गया। अब देखता हूं आनन्द और उल्लास यहाँ से बहुत दूर हैं। वह वेदना अब मेरे हृदय को खाती है और भय ने मुझे अन्धा कर दिया है।

# स्मृति

मैं तुम्हें कभी नहीं भूल सकता, कभी नहीं।

जीवन के प्रत्येक सौन्दर्य-स्थल में तुम्हारी स्मृति लहरा रही है और उसका अकस्मात् स्पर्श होते ही हृदय में घाव हो जाता है। जहर से बुझी हुई बर्छी की भाँति तुम्हारा नाम कलेजे के भीतर तक घुस जाता है।

## उपहार

आकाश के इन तारों का एक हार तुम्हारे लिये बनाया जाय तो कैसा ?

आज तुम्हारी सेज पर पृथ्वी भर के फूल चुन दिये जायँ तो कैसा ?

परन्तु तुम यदि इन फूलों और तारों में खो गई तो ???

# केवल रात्रि में

मैं केवल रात्रि में ही जीता हूँ। तुम्हारे स्वप्नों के सहारे। जीवन मेरे लिये श्वास लेना मात्र है।

एक दिन, एक घड़ी, एक क्षण के लिये अपना प्यार फिर मुझे दो।

उल्लास जला जा रहा है। और मैं उसकी प्रतीक्षा में हूँ—उसे मुझे दो। यदि मैं उस घड़ी, उस क्षण, के पूर्व ही मर जाऊँ तो फिर तुम्हें कभी यह कष्ट न करना पड़ेगा।

# अगम्य के प्रति

मेरा रक्त शीतल जल हो गया है, प्रिये क्या तुम प्यासी हो ?

किन्तु, इस अनन्त मरुदेश में हम तुम परस्पर कितना दूर हैं।

इस ऊष्ण बालुका पर पतन होने से पूर्व सिर्फ एक बा[illegible]

उस स्वप्न चुम्बन की, उस अमृत विन्दु की आशा क[illegible]

कितना दुस्साहस है ?

क्या फिर सम्मेलन होगा ?

ओह, प्रेम और आकांक्षा से दूर, अतिदूर वह [illegible]

[illegible]रण प्रतिविम्ब कैसा अपूर्व है। वह स्थिर है, [illegible]

## सूर्यास्त

कैसी उदासी से सूर्य अस्त हो रहा है। उन रक्त वर्ण बादलों में चुपचाप खड़ी तुम, मुझ खिन्न-खंडित और व्यथित की विदाई के सन्देश का संकेत करती हुई कहां जा रही हो ?

## वह अमावस्या

वह अमावस्या, जिसके अन्धकार के भाग्य में चन्द्र-किरण की एक रेख भी नहीं सिरजी गई, कितनी निर्मम हो सकती है ! जैसे एक पाषाण प्रतिमा, जिसमें न हृदय का स्पन्दन है और न श्वास का अवकाश। केवल एक आकृति है जो काली होती हुई भी रात्रि की स्मृति की भांति प्रिय प्रतीत होती है।

## तीव्र मद्य

किस तरह स्मृति की उस तीव्र मद्य ने मन को उन्मत्त बना रखा है। मैं तो सब कुछ खो चुका, भय है अब कहीं स्वयं न खो जाऊं। पर अपने विषय में कुछ सोचने का तो मुझे अवकाश ही नहीं है? मैं सोचता हूं—वह कुछ तो कहेगी, मुस्करायेगी, अथवा...टप से एक बूंद अमल धवल उत्तप्त जलकण अपने अभ्यास के अनुसार चुपचाप गिरा देगी।

## झरोके से

जब धूसरित सन्ध्या का क्षीयमाण प्रकाश तमाम जगत् को धुंधले अन्धकार में डूबता अरक्षित छोड़ जाता है, तब तुम उस सुदूर तारे के झरोके से मुझे भटकता देख कर क्या समझती होगी ?

## नेत्रों का प्रकाश

कलाधर की स्निग्ध ज्योत्स्ना आकाश में खिली हुई है और रात दूध में नहा रही है। पर जब तक तुम्हारे नेत्रों का प्रकाश मेरे नेत्रों में ज्योति बनाये हुए मुझे किस प्रकाश की ज़रूरत है।

## ऊषा

अभी ऊषा का उदय भी नहीं हुआ। ठण्डी हवा का यह झोंका लता गुल्मों को हिलाता और वृक्षों को झकझोरता हुआ अपनी राह जा रहा है। रात्रि का अन्धकार और शीतलता अभी है।

वह कौन पक्षी शोकपूर्ण स्वर में आने वाले दिन का स्वागत कर रहा है?

# धूल

ओह, उन चरणों के निकट की धूल कितनी सुखी है, इसमें से एक कण इधर उड़ कर आने दो, प्रिये, मैंने उसके लिये कब से आँखें बिछा रखी हैं।

मुझे उन शीतल चरणों के चुम्बन का सौभाग्य नहीं प्राप्त हुआ था—अब मैं उस रजकण को चूमकर ही यह साध पूरी करूँगा।

# वह मधुर चितवन

ओह ! वह मधुर चितवन। वे नेत्र, जो अस्त होते हुए सूर्य के से प्रतिविम्ब रक्ताम्बर के छोटे से तारे के समान थे, क्या मैं कभी उन्हें स्वप्न में देखने का साहस भी न करूँ ?

उस दिन, तुम मुझे देखकर मुस्कुराई थीं, तव मैं अपने जीवन के समस्त उल्लास के साथ दौड़ा था और कहा था ठहरो, पर तुम किस लोक में हँसने को चली गईं ? सिर्फ एक बार हँस कर।

# मा

# मा

मेरा जीवन और प्राण तुम्हारे प्राणों का एक कण था। उसे पाकर मैंने अपना निर्माण किया। तुमने रक्त से रक्त दिया और शरीर से शरीर वह चिर काल तक तुम्हारे सुन्दर शरीर में एक अप्रतिम धरोहर की भाँति धरा रहा, और अन्त में तुम उसे अनायास ही छोड़ कर चली गई मेरी मा !!

## आदान प्रदान

तुमने मुझे जन्म दिया और मैंने तुम्हें मृत्यु। तुमने मुझे यौवन दिया और मैंने तुम्हें जरा। तुमने मुझे जीवन दिया और मैं तुम्हें कुछ भी न दे सका। तुम मेरी ओर देखती ही चली गईं, मा, मुझसे क्या तुम्हारी कोई भी अभिलाषा न थी !!

# वार्धक्य विजय

यौवन ने अनगिनत आक्रमण किये, पर वह शैशव को परास्त न कर सका; तुम्हारा वरद हस्त उसके मस्तक पर था। परन्तु ज्योंही उस पर से उस पाणि की छाया लोप हुई, वार्धक्य ने उसे अनायास ही विजय कर लिया! मा, यह वार्धक्य अब मुझे मृत्यु की ओर ले जा रहा है।

# फूलों की रानी

तारों से भरी रात में—मां, जब तुम मेरी छोटी सी खटिया के निकट बैठ कर, फूलों की रानी की कहानी सुनाती थीं. और जब सुनहरी घोड़े पर सवार होकर वह राजकुमार आता था तो मुझे ऐसा प्रतीत होता था जैसे मैं ही वह सुनहरी घोड़े का सवार राजकुमार हूँ। उस समय मैं एक बड़े से तारे में दृष्टि जमाकर कहता—मां, क्या वह राजकुमारी इस तारे से भी दूर है? वह कैसे आ सकती है? तब तुम दुलार से मेरे सिर पर हाथ फेर कर कहती, हां, भैया, वह बहुत दूर है पर जब तुम बड़े होंगे तब उसे लाओगे। तब ढोल बजेंगे, और बाजे गाजे की धूम धाम होगी। मैं उस फूलों की राजकुमारी की बहुत सी बातें

पूँछता २ तुम्हारी गोद में सो जाता। और तुम हंसी को होठों की कोर में छिपाती, धीरे २ मेरे सारे शरीर पर प्यार का हाथ फेरती हुई न जाने क्या २ कहे ही चली जाती थीं, कहे ही चली जाती थीं।

समय आया और मैं राजकुमारी को बाजे गाजे के साथ ले आया। पर जब देखा तो मालूम हुआ कि वह फूलों की न थी, सोने की रानी थी। परन्तु, उसदिन जब मैंने उस राजकुमारी को चिर विदा दी तब एकाएक देखा—वह फूलों ही की रानी थी, वह फूलों ही से लद रही थी। उस दिन तुमने भी तो मां, अपनी आंखों से उस पर फूल बरसाए थे।

## कहानी

तुम कितनी कहानी कहती थी मां, इसकी अब एक बिस्मृत स्मृति ही बची है, परन्तु अब तो मैं धीरे धीरे स्वयं एक कहानी बनाता जा रहा हूँ मां !

# स्फुट

## प्यार

प्यार प्यारे, जब से तूने हृदय में वास किया, आत्मा जग उठी। मन मौज में रम गया और संसार सुन्दर हो गया। जो नहीं देख पड़ता था—वह दिखाई देने लगा, बस अब तुझे ही देखने की अभिलाषा बाकी रही है।

मद्य और मादक पदार्थों से मुझे घृणा है। मुझे भय है कि कहीं तुझ में उसका सम्पुट तो नहीं है। मद में मत्त पुरुष को मैंने जैसे झूमते देखा है। तेरी लहर मन में आते ही वह हाल मेरा हो जाता है। लाख रोकने पर भी मैं असम्बद्ध, असंयत हो उठता हूं। हज़ार सावधान रहने पर भी मूर्ख बन जाता हूं।

आँखों से प्यारी चीज़ जगत में क्या है ? सुना है तू अन्धा है, तब तू सौन्दर्य की ऐसी अमोघ परीक्षा कैसे कर लेता है ? तू स्वयं ही कैसे अनिन्द्य सुन्दर बना हुआ है ? जगत का सौन्दर्य क्या देख कर तुझ पर रीझ जाता है। आश्चर्य है। सुना है तू अन्धों को दिखाई देता है, इतना तो मैं भी कह सकता हूँ कि जब जब तेरी लहर आती है तब तब मुझे कम दीखने लगता है। अंधेरा, उजाला, नर्म, सख्त, नीचा, ऊँचा, ठीक ठीक नहीं मालूम देता, सब एक सा हो जाता है। मुझे भय है, सच कह, क्या तुझ में मद का सम्पुट है ? यदि ऐसा हो, तो तू चाहे जितना प्यारा क्यों न हो मैं तुझे न चाहूँगा।

## सुख

उसका कोई रूप न था। वह केवल एक अछूती कल्पना थी, जिसका अस्तित्व ओस की बूंद की भांति था जो छूते ही खो जाती है।

मैंने उसकी चाहना की। मैंने समझा--वह प्यार का मतवाला भौंरा है, मैं प्यार की पुतली को खोज लाया और अपने प्राण उसके अर्पण कर दिये, पर वह नहीं आया। मैंने सोचा वह धन का लालची कुत्ता है, मैंने धन की राशि संग्रह की और अपना मनुष्यत्व उसे अर्पण किया—वह फिर भी नहीं आया। मैंने विचार कर देखा—वह ज्ञान का ग्राहक है, मैंने ज्ञान के कपाट खोल दिये और भावना की सारी

नहीं देखता सुनता ? हज़ारों लाखों करोड़ों-अरबों मनुष्यों में तू निराला है ! तू केवल आनन्द और मस्ती में सदा स्नान करता है। तू अनोखा अपाहज है। अनहोना अभागा है, निराला निराला है। तेरे ऊपर हमारा समस्त विज्ञान और सावधानता न्योछावर है। तुझे निर्दोष बच्चे की तरह निस्संकोच, नग्न देख कर हम लाज से मरे जाते हैं। हाय, हम तो लाख तरह अपने को ढकते हैं—फिर भी सब कुछ उघड़ जाता है। हे चैतन्य मूढ़, हे अकृत गुरु, ज़रा सामने खड़ा रह, मैं चेष्टा करके देखता हूँ कि तुझे देखकर, मैं कुछ देख सकता हूँ या नहीं।

# उस पार

सांझ हो गई, और अब आलोक की आखिरी किरण भी जा रही है। उस पार हमारा घर है और बीच में यह अपार धार। वहां तो मेरे सब सुख साधन हैं। फेन सी कोमल शैया, और......और उसके चारों ओर बिखरा हुआ प्यार, जिसे रौंदने में मेरे तलुओं को सदा सुख मिलता रहा है।

तुम्हारी नाव किधर जा रही है माझी ! क्या आज उस पार पहुँचना असम्भव है ? आह, वे सब तो मेरी प्रतीक्षा कर रहे होंगे।

# पावस ऋतु

ये आंखें तो रात दिन बरसने लगीं।

मेरा वह मधुमय उज्ज्वल जीवन पावस की ऋतु हो गया, और मेरी आशा की आलोकित धारा अंधेरी रात हो गई। जगत हँसता है तो बिजली सी कौंधा मारती है। जी घबराता है। मन की क्षुद्र बरसाती नदी में बाढ़ आ गई है—और उसमें प्राण डूबने लगे हैं। अरे! कोई उबारने वाला भी है? घर और परिजन तो सब क्षितिज के उस पार हैं, कोई मीत ऐसा भी है जो वहां सन्देश पहुँचा दे, इन प्राणों के डूबने से प्रथम।

# क्षणभंगुर

वह अतिशय शुभ्र और शीतल था और मैं नादान उत्तप्त। मैंने उसे 'ताप के उन्माद में सिर पर, छाती पर और मुख पर खूब रगड़ा, दबाया, मुख में रख कर चूसा, और क्षण भर शान्ति लाभ की। परन्तु वह जैसा अभिमानी और कठोर था, वैसा ही क्षण भंगुर भी। मेरा ताप तो वैसा ही रहा और वह घुल कर बह गया, उसी ताप से तप कर।

# आँखमिचौनी

मैं अपने चिर सहचर शैशव के साथ खुले खेल में मगन थी, परन्तु अमम्पूर्ण तारुण्य मेरी ताक में था, वह कुसुम कली को झोंके दे दे कर 'झकझोर झकझोर कर, उसे मधुर हास्य हँसा हँसा कर, मेरे मनोरंजन की चेष्टा चुपचाप किया करता था। कभी वह भौंरा बन कर गूंजने लगता, कभी वासन्ती वायु के साथ मुझे आ छूता। कभी चाँदनी रात और कभी झिलमिल सुनहरी धूप में हँसने लगता था।

मैं उसे पहचानती न थी। मुझे उसकी परवाह न थी। मेरा सहचर शैशव मुझे बहुत भाता था, मैं उसके साथ खेलती रहती. परन्तु वह फिर मेरे चारों ओर घूमने लगा, एक दिन उसने मुझे छू लिया—मैं लजा गई, छुई मुई सी सिकुड़ गई।

तभी से, एक भय-एक आशंका मन में घर कर गई। कौन है यह अपरिचित ? मैं चौकन्नी सी, घबराई सी, भीताचकिता सी, अब खेलने निकलती। परन्तु अब उसका अज्ञात अभाव भाव सा छू जाने लगा। वह छलिया अब छिप २ कर नये २ खेल दिखाता था। मैं कभी विराग से देखती और कभी चाव से। उसका छू जाना मुझे भाने लगा। मैं अपनी नज़र बचा कर उसे निहारने लगी। मैं उसकी प्रतीक्षा में रहती। वह मुझे गुदगुदाने लगा। वह मुझे छूता था, गुदगुदाता था, आंखमिचौनी खेलता था। मैं उसे पहचान गई थी, पर देख न पाती थी। फिर भी उसने मुझे ऐसा भरमाया कि मैं विमूढ़ हो उसके हाथ बिक गई।

उस दिन नदी के किनारे मैंने उसे देखा। प्रभात के सतेज सूर्य के समान उसका मुख था, और ऊषा के आलोक की भांति स्वर्ण शरीर। हीरे सी आंखें और चाँदी सा मस्तक था। वह लोहे सा सुदृढ़ और केले के नवीन पत्ते की भांति कोमल था। वह जीवन की भाँति सुन्दर और प्रिय था। पृथ्वी भर की मिठास उसके उत्फुल्ल होठों में थी। जब वह बोला तो वाणी मूर्तिमती हो उठी।

मैं उस पर रीझ गई। मैं सकुचाते हुए उसके पास गई। पूँछा:—

"कौन हो तुम ?"

"यौवन"

"वह तुम्हीं थे"

"हाँ"

"तुम्हीं आंखमिचौनी खेलते थे?"

"हां"

"तुम्हीं मुझे गुदगुदाते थे ?"

"हां"

"छूते थे ?"

"हाँ"

"अब तक दीखते क्यों नहीं थे।"

"मैं तुम में रमा हुआ था, पहिले आत्मा में, फिर अंग में। तब मैं असम्पूर्ण था, अब सम्पूर्ण होते ही मेरा अलग अस्तित्व हो गया।"

"परन्तु मैं तो अब असम्पूर्ण हो गई ?"

उसने हँस कर कहा —

'नहीं' अब हम तुम मिलकर पूर्ण होंगे। आओ मेरे साथ।

और हम मिल गए।

# नीरव-रव

उस दिन मैंने उसे सुना। कैसा भीषण था। जगत उसे नहीं सुन सकता। वह उसकी घोर ध्वनि से बहरा होगया है। जिस समय इन्द्रियों के बन्धन से ज्ञान मुक्त हुआ और विश्व-व्यापी वातावरण में उसकी कलाएं विस्फारित हुईं, एकाएक मालूम हुआ कि वह अनवरत ध्वनि, अप्रतिहत गूंज, विश्व के वातावरण में भर रही है, उसका केवल एक ही स्वर है, एक ही सम है, न उसमें गान न ताल, विश्व मानों उसमें डूब रहा है। जैसे सूर्य के रंग नहीं दीखते, जैसे दिन में तारे नहीं दीखते, उसी तरह क्षुद्र इन्द्रियाँ उसे नहीं सुन सकतीं, वे उसमें डूबी पड़ी हैं। विश्व के वातावरण से बहुत दूर तक वह एक ठोस द्रव की भाँति मूर्तिमान ओत प्रोत हो रहा है, उसमें एक

आकर्षण था, अद्भुत। जैसे भीषण अजगर अपने श्वास के साथ अनेक प्राणियों को अपनी ओर खींचकर निगल जाता है, उसी तरह उसने मुझे आकर्षण किया. मैं विवश हो गया. परन्तु आत्मा से शरीर का विच्छेद नहीं हुआ था, यहाँ दिन था रात थी, मित्र बन्धु थे. और स्मृतियों की असंख्य रेखाएँ थी. मैं उधर खिचा चला जा रहा था। तीव्रगति से उड़ते पक्षी को जैसे नीचे का संसार दीख पड़ता है, उसी भाँति यह सब मुझे दीख रहा था। कभी २ मेरा शरीर मुझे छू जाता था। हाय, उसे बाँधवों ने बांध रक्खा था। आत्मा रव पर दुर्धर्ष गति से जा रही थी. परन्तु किसी तरह शरीर से उसका विच्छेद न हो पाता था, अपदार्थ शरीर को लेकर जा कहां सकता था? उस वेग का आघात पार्थिव शरीर कहां सह सकता? मिट्टी के भारी खिलौने को लेकर कहीं भारी यात्रा हो सकती है?

कुछ न हुआ, शरीर न छूटा, मैं रह गया, वह रव दूर होता गया, उसका आकर्षण दूर होता गया, होश में आकर देखा-वही दुःखदायी शैया, वही चिन्ता, और उत्तरदायित्वपूर्ण पारिवारिक भावना। वही पुराने मित्र, वही परिचित संसार, सब वही पुराना, अज्ञात रहस्य का ज्ञान मिलते २ रह गया, न जाने वहाँ क्या था? वह तत्त्व अज्ञात ही रहा! ज्ञान फिर इन्द्रियों के पींजरे में लौट आया। जगत में फिर लौट आकर देखा, वही कोलाहल भरा था।

इति